मार्च 2000 मूल्य : सात रुपये

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

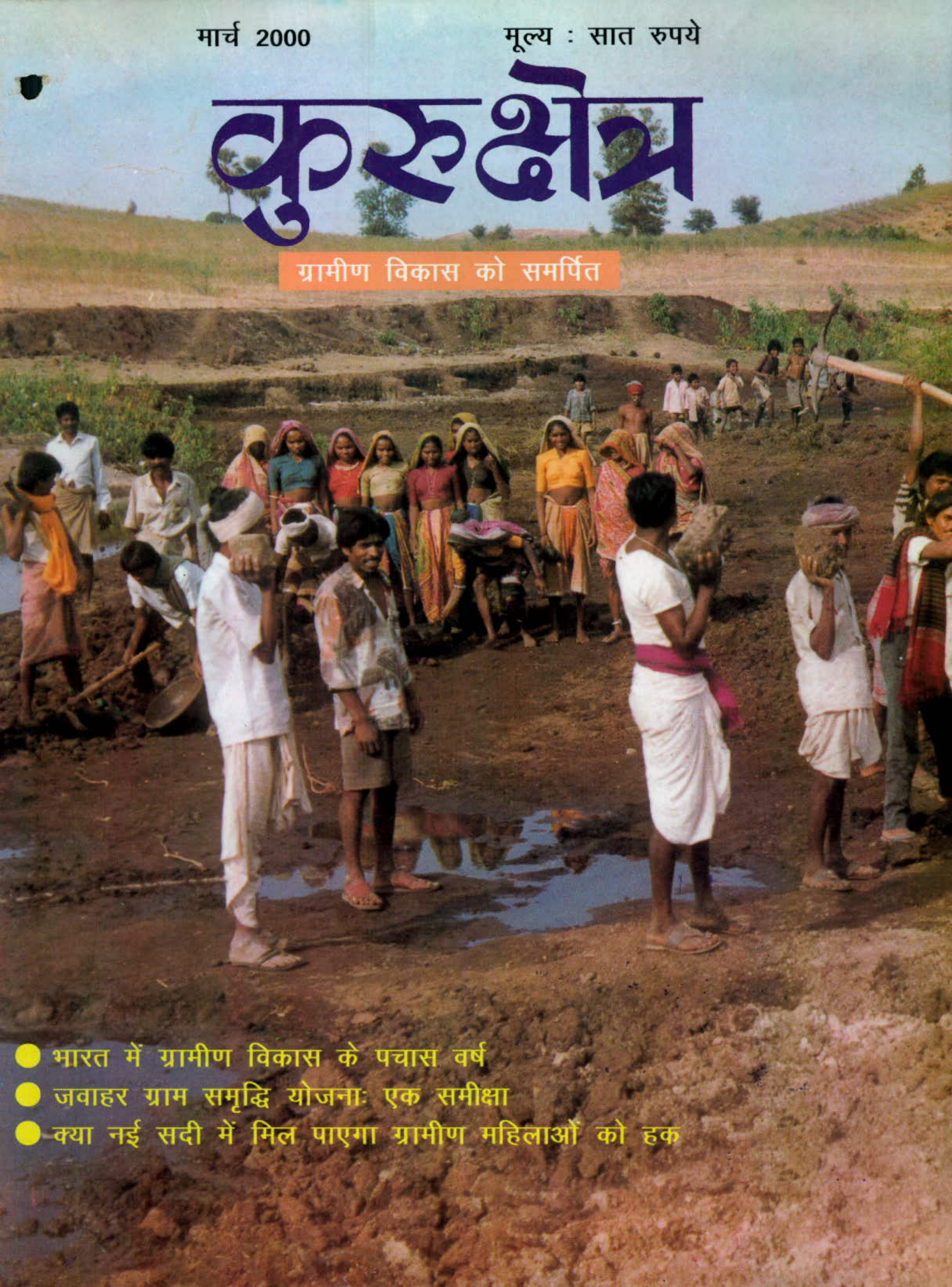

- भारत में ग्रामीण विकास के पचास वर्ष
- जवाहर ग्राम समृद्धि योजनाः एक समीक्षा
- क्या नई सदी में मिल पाएगा ग्रामीण महिलाओं को हक

विकास का लाभ गरीब से गरीब व्यक्ति को मिलना चाहिए

एफ्रो–एशियाई ग्रामीण पुनर्निर्माण सम्मेलन की 46वीं बैठक में ग्रामीण विकास मंत्री का उदघाटन भाषण

देवेन्द्र उपाध्याय

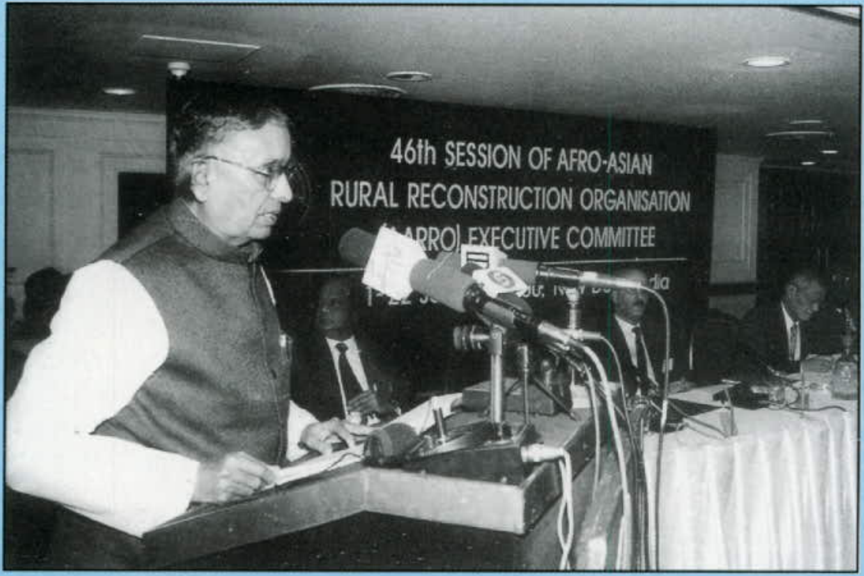

नई दिल्ली में एफ्रो–एशियाई ग्रामीण पुनर्निर्माण सम्मेलन संगठन (आरो) की कार्यकारिणी की 46वीं बैठक और 12वीं सामान्य सभा की बैठक 21 से 25 जनवरी 2000 के बीच संपन्न हुई। इसमें भारत को अगले तीन वर्ष के लिए संगठन का अध्यक्ष चुना गया। इसके साथ ही अब संगठन का नाम एफ्रो–एशियाई ग्रामीण विकास संगठन रखा गया है।

कार्यकारिणी की बैठक का उदघाटन भारत के ग्रामीण विकास मंत्री श्री सुन्दर लाल पटवा ने किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि विकास का लाभ गरीब से गरीब और समाज के वंचित वर्गों को मिलना चाहिए।

श्री पटवा ने कहा कि एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों में कई समान समस्याएं हैं। इन्हें विकास के मुद्दों पर एक साथ काम करना और समस्याओं का समाधान ढूंढना चाहिए। उन्होंने कहा कि गरीबी, निरक्षरता, बीमारी और बेरोजगारी जैसी समान समस्याएं हैं जिनसे अधिसंख्य आबादी पीड़ित है।

भारत का जिक्र करते हुए श्री पटवा ने कहा कि हमने समाज के वंचित वर्गों तक पहुंचने का प्रयास किया है। रोजगार गांरटी कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण बुनियादी ढांचे में सुधार करते हुए रोजगार के अवसर पैदा किए गए हैं। वर्तमान ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में जनता की भागीदारी को बढ़ावा दिया जा रहा है और कार्यक्रमों में कुशलता, पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चित की जा रही है। उन्होंने कहा कि स्थानीय निकायों में तीन स्तरीय प्रणाली लागू कर निचले स्तर से ही लोगों को जोड़कर ग्रामीण क्षेत्रों में महत्वपूर्ण बदलाव लाया गया है।

एशिया और अफ्रीका के देशों में ग्रामीण पुनर्निर्माण के बारे में इन दोनों महाद्वीपों के नेताओं ने पहले एफ्रो एशियाई सम्मेलन में ठोस आधार तैयार किया था। नई दिल्ली में जनवरी 1961 में भारत सरकार की पहल पर हुए इस सम्मेलन का उदघाटन तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने किया था। प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी सम्मेलन को संबोधित किया था। सम्मेलन में कृषि और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में इन देशों के बीच आपसी सहयोग की आवश्यकता को रेखांकित किया गया

(शेष आवरण पृष्ठ तीन पर)

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 45 अंक 5

फाल्गुन–चैत्र 1921–22

मार्च 2000

संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
जयसिंह
बी.एस. मिरगे

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र',
ग्रामीण विकास मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011–3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा
अलका नय्यर

फोटो साभार :
मीडिया डिवीजन, ग्रामीण विकास मंत्रालय

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

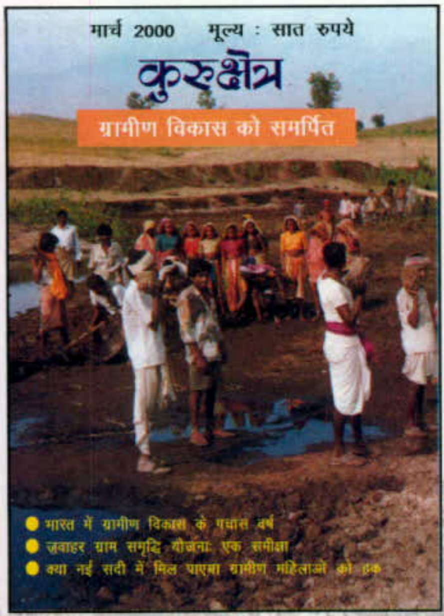

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

भारत में ग्रामीण विकास के पचास वर्ष	एस.एन. मिश्रा डा. स्वेता मिश्रा	3
जवाहर ग्राम समृद्धि योजना : एक समीक्षा	डा. कैलाश चन्द्र पपनै	10
पिछले पचास वर्षों में भारत के ग्रामीण क्षेत्र का उत्थान	प्रयाग दास हजेला	12
क्या नई सदी में मिल पाएगा ग्रामीण महिलाओं को हक	इरा सिंह	16
स्त्री–बाल स्वास्थ्य : नई सदी में नई अपेक्षाएं	आशारानी व्होरा	18
पक्षाघात की शिकार .... पंचायत सरकार	भूषण लाल परगनिहा	21
गांवों में आवासीय समस्या का समाधान संभव	अमरेश कुमार तिवारी	27
नदिया बहती रहो (कहानी)	डा. शीतांशु भारद्वाज	31
ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका	नसरून निशा	33
उपभोक्ता : अधिकार और संरक्षण	संजय कुमार रोकड़े	35
पंचायतों में जनजातीय नेतृत्व और जानकारी का स्तर	डा. आशीष भट्ट	38
ग्रामीण बालिकाओं के लिए सार्थक शिक्षा	डा. राज भारद्वाज	43
पर्यावरण की सुरक्षा और जलावन की समस्या	अंकुश्री	46
गांधी जी का स्वप्न (स्थायी स्तम्भ)		48

पाठकों के पत्र

पारंपरिक कलाओं को संरक्षण दिया जाना चाहिए।

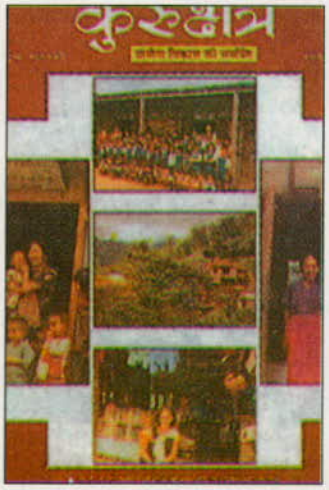

कुरुक्षेत्र के नवम्बर' 99 के अंक में प्रकाशित सभी लेख और चित्र प्रभावकारी लगे। विजय कुमार द्वारा लिखे गये लेख *बदहाली के कगार पर, कुम्हार की कलाकारी* बड़ा ही विचारोत्तेजक और प्रभावपूर्ण लगा। लेखक के विचारों से मैं पूर्णतया सहमत हूं। उदारीकरण और भूमंडलीकरण के मौजूदा दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारवाद ने लोगों की पारंपरिक कला विरासत को समाप्त किया है। शिल्पकारों को रोजगार के लिए दर–दर भटकने को विवश किया है। वैसे तो कला, संस्कृति का हिस्सा है लेकिन औद्योगीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया ने सारे हस्त हुनरों को छीना ही नहीं है बल्कि पर्यावरण को भी दूषित किया है। शीशा गलाने से काफी प्रदूषण फैलता है जबकि इससे एक सौ दो गुणा अधिक प्रदूषण प्लास्टिक गलाने से फैलता है। अब तो यहां खूब प्लास्टिक गलाकर छोटे–बड़े सामानों से बाजार भर दिया गया है और शिल्पकार को दाने–दाने को मोहताज कर दिया है। इसी तरह बांस छीलकर जो सूप, डाला, पंखा, चटाई, टोपी, आदि बनाते थे उन्हें बेकार कर दिया है। देशज वस्तुएं आज बिकती नहीं हैं क्योंकि उन्हें देशी शिल्पकार बनाते हैं। बाजार तो विज्ञापन और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का है।

स्टेनलेस स्टील के बर्तन, मिट्टी के बर्तन से टिकाऊ जरूर हैं पर, मिट्टी के बने बर्तन में खाना पकाने पर भोजन ज्यादा स्वादिष्ट लगता है। ऐसी पारंपरिक कला विरासत जीवंत रहे इसके लिए सरकार के साथ–साथ हम भारतवासियों को भी थोड़ा पीछे झांककर देखने और संरक्षण देने की जरूरत है।

इन्द्रमणि साहू, द्वारा श्री झण्डू महतो, फारेस्ट आफिस, मोहनपुर, पो. पचम्बा, गिरिडीह 815316, बिहार

राष्ट्रीय कृषि बीमा से संबंधित सुझाव उपयोगी

दिसम्बर 1999 के *कुरुक्षेत्र* पत्रिका के अंक में डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल का राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना के सम्बन्ध में आलेख पढ़ा। योजना की विशेषताओं एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डालने के साथ–साथ डा. अग्रवाल ने इसे परिणामोन्मुखी बनाने हेतु उपयोगी सुझाव दिए हैं। लेखक का यह सुझाव कि, योजना के व्यापक प्रचार–प्रसार हेतु सरकारी प्रचार माध्यमों, स्वयंसेवी संगठनों और पंचायती राज संस्थाओं का सहयोग अनिवार्य है, स्वागत–योग्य है।

वस्तुतः केन्द्र की विभिन्न सरकारों ने फसल बीमा योजना में संशोधन किए हैं और इसे नए–नए नाम दिए हैं। कभी इसे विस्तृत फसल बीमा योजना कहा गया तो कभी संशोधित फसल बीमा योजना। इसमें परिवर्तन का मूल उद्देश्य एक ऐसा प्रतिमान तैयार करना है जो आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त, प्रशासनिक दृष्टि से अमल में लाने योग्य और किसानों के हितों की रक्षा करने में सक्षम हो। मगर ये लक्ष्य अब तक पहुंच से बाहर रहे हैं।

लेखक का यह निष्कर्ष भी उचित है कि यदि इस योजना के क्रियान्वयन की प्रारम्भिक अवस्था में ही कुछ उपायों पर विचार कर लिया जाए तो सरकार की आशाओं और कृषकों की अपेक्षाओं के अनुरूप यह योजना सफलता की ओर अग्रसर होती रहेगी।

भारत भूषण शर्मा, किशनगढ, जिला–अजमेर (राजस्थान)

ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता बढ़ाने के लिए मानसिकता में परिवर्तन आवश्यक

कुरुक्षेत्र पत्रिका का दिसम्बर 1999 अंक पढ़ा। इस अंक में सिमरन कौर का आलेख 'ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता' लेख से यह जानकर दुख हुआ कि महिलाओं में विशेषकर 7.75 लाख प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक विद्यालय तथा 29.86 लाख शिक्षक नियुक्त करने के बावजूद भी साक्षरता का प्रतिशत काफी कम है। घरेलू कार्यों की वजह से विद्यालय न भेजने से यह स्थिति बनी हुई है। ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता बढ़ाने के लिए मानसिकता में परिवर्तन आवश्यक है।

डा. कैलाशचन्द्र पपनै का आलेख *ग्रामीण आवास का बदलता परिदृश्य* तथा सत्यपाल मलिक का आलेख *पोलियो मुक्त भारत – बढ़ते कदम* भी ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी प्रतीत हुए।

डा. एस.के. शर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर, एस.सी.ए. गवर्नमेंट कालेज, झाबुआ (म. प्र.)

भारत में ग्रामीण विकास के पचास वर्ष

* एस.एन. मिश्रा
* डा. स्वेता मिश्रा

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकार ने स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से ही गंभीर प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के तहत देश भर में ग्रामीण विकास का व्यापक प्रयास किया गया। इसके बाद गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लाभ के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और जवाहर रोजगार योजना जैसे बड़े कार्यक्रम शुरू किए गए। 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करने का प्रयास किया जा रहा है। हाल ही में पहले से चल रहे अनेक विकास कार्यक्रमों का विलय कर स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना के जरिये स्वरोजगार को बढ़ावा दिया जा रहा है। जवाहर रोजगार योजना का स्वरूप बदलकर अब जवाहर ग्राम समृद्धि योजना शुरू की गई है जिसके तहत रोजगार के अवसर जुटाने के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी परिसम्पत्तियों के निर्माण पर विशेष बल दिया जाता है।

भारत के संदर्भ में ग्रामीण विकास को एक प्रक्रिया या व्यूह–रचना तक ही सीमित कर देना भारतीय जन–जीवन के ताना–बाना को सतही धरातल तक ही सीमित रखना माना जा सकता है। ग्रामीण विकास तो आदिकाल से हमारे जीवन का अंग रहा है। हमारे मनीषियों ने इसे एक दर्शन और साधना के रूप में स्वीकार किया। यदि रामराज्य से लेकर चाणक्य तक तथा गुप्त वंश से लेकर मध्य युग तक की ऐतिहासिक रचनाओं रूपी निधि पर हम निगाह डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि पूरी की पूरी प्रशासकीय व्यवस्था ग्रामीण स्तर से ऊपर की तरफ जाती थी। चाहे वह कौटिल्य के जमाने का प्रजातंत्र हो या बाद के काल का राजतंत्र सबमें ग्रामीण जीवन की सुख सुविधाओं और सर्वांगीण विकास पर ही बल दिया गया है।

ग्रामीण विकास की दिशा और गति कहीं अवरुद्ध हुई दिखाई पड़ती है तो वह मुगल और अंग्रेजी शासन काल की व्यवस्था में। लेकिन मुगलकाल के समानांतर ही एक शासक शेरशाह ऐसा हुआ जिसने पूरे भारतवर्ष के एक गांव को दूसरे गांवों से जोड़ने के लिए घोड़े द्वारा डाक की प्रथा चलाई। ऐसे अनेक अन्य उदाहरण हमें इतिहास में मिल जायेंगे। फिर भी जहां तक स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद ग्रामीण विकास की एक सही समीक्षा करनी हो तो, पहले बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में उठाए गए कदमों पर एक विहंगम दृष्टि डालना उचित होगा क्योंकि इनके बगैर हमारा मूल्यांकन अधूरा–सा लगेगा। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि जब हम ग्रामीण विकास की समीक्षा करने बैठें ते सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के लागू होने से पहले स्वतंत्र रूप से उठाए गए कदमों को उनके साथ जोड़ा जाए। एक अन्य दृष्टि से भी यह आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि समय–समय पर ग्रामीण विकास सम्बन्धी जो कार्यक्रम बनाए गए और उनको जिस तरह का दिशा–निर्देश दिया गया उसकी सही जानकारी हमें मिल जाती है जिसके परिणामस्वरूप हम

* प्रोफेसर आफ रूरल स्टडीज, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, आई.पी. इस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली – 110002
* व्याख्याता, राजनीति शास्त्र विभाग, इन्द्रप्रस्थ कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) शामनाथ मार्ग, दिल्ली – 110054

गरीबी दूर करने के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत स्वर

अपनी समीक्षा को संस्तुतियों के साथ एक नई दिशा दे सकते हैं।

ग्रामीण विकास के ताने बाने का विभाजन

हम ग्रामीण विकास के इस ताना–बाना को इतिहास के दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला सामुदायिक योजना से पहले लागू करने के प्रयास और दूसरा उनके बाद के किए गए प्रयास। फिर पहले भाग को हम पुनः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं जो है – पहला 1921–1930 की अवधि जिसे *अग्रणी* कहा जा सकता है और दूसरा 1930–1952 की अवधि जिसे *परीक्षण की अवधि* कहा जा सकता है। इस अवधि में कुछ ऐसे सरकारी और गैर–सरकारी कदम उठाए गए जिन्होंने बाद में चलकर सामुदायिक विकास कार्यक्रम को स्वरूप दिया और हमारे संविधान में भी उनका यथास्थान प्रावधान किया गया। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद के प्रयासों को यानि 1952 के प्रयासों को हम फिर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। वे हैं :

1. प्रशासकीय अवग्रहण मंच (1952–1955);
2. तकनीक समन्वित मंच (1956–58) और
3. प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण मंच (1959 से आज तक)।

जहां तक 1921–30 की अवधि का प्रश्न है यह अवधि ग्रामीण पुनर्निर्माण और विकास के क्षेत्र में सबसे प्रतिकूल अवधि कही जा सकती है क्योंकि इस अवधि में महर्षि रवीन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा शांति निकेतन प्रयोग, डा. स्पेन्सर हैच द्वारा केरल में वाई.एम.सी.ए. के तत्वावधान में मारतन–डैम प्रयोग, इ.एल. ब्रेने द्वारा किया गया गुड़गांव आंदोलन से जुड़े हुए अन्य प्रयोग तथा 1932 की वी.टी. कृष्णमाचारी का बड़ौदा ग्रामीण पुनरूत्थान प्रयोग शामिल हैं। इन सभी प्रयोगों ने स्वतंत्र भारत के लिए ग्रामीण विकास की एक ऐसी नींव डाली जिस पर ग्रामीण विकास रूपी सपनों का महल खड़ा किया जा सकता है। उस नींव की अगली ईंट के रूप में मद्रास की फिरका योजना, एस.के. डे द्वारा किया गया निलोखेड़ी प्रयास तथा अल्बट मेयर द्वारा किया गया इटावा पाइलट प्रयोग

ढ़ावा दिया गया

आदि को माना जा सकता है। इन्हीं प्रयासों में अगली कड़ी के रूप में फिस्कल कमीशन तथा खाद्यान्न उपजाऊ समिति आदि भी शामिल हैं। सामाजिक और आर्थिक न्याय के लिए जो हमारे संविधान की धारा 36–51 तक के प्रावधान हैं उन्हें भी जोड़ा जा सकता है जिन्हें राज्य के नीति निर्देशक तत्व कहा जाता है।

प्रारम्भिक प्रयास

पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान ग्रामीण विकास के लिए जो सबसे पहला प्रयास किया गया वह था सामुदायिक विकास। सामुदायिक विकास को योजना निर्माताओं ने एक पद्धति के रूप में स्वीकार किया जबकि राष्ट्रीय विस्तार सेवा को एक ऐसी संस्था के रूप में स्वीकार किया जो सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने में मदद कर सके। साथ ही जहां सामुदायिक विकास को विकास का एक आधारभूत प्रखण्ड माना गया जो कि तीन वर्ष के अन्दर प्रखण्ड के पूर्ण जीवन में परिवर्तन ला सके वहीं राष्ट्रीय विस्तार सेवा को एक स्थायी, बहुउद्देश्यीय विस्तार संस्था के रूप में स्वीकार किया गया। इनके अतिरिक्त जन–मानस में स्वयं उत्थान की भावना को भी जगाना था। इसके लिए विस्तार अवधारणा के आधार पर खण्डों का निर्माण किया गया जो कि प्रखण्ड विकास पदाधिकारी की अगुवाई में प्रशासकीय नेतृत्व प्रदान कर सके।

जहां तक इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यक्रमों को लागू करने का प्रश्न है, भारत सरकार ने फोर्ड फाउन्डेशन के साथ सामुदायिक योजनाओं को लागू करने के लिए पहले प्रयोग के रूप में मात्र 52 सामुदायिक परियोजनाओं को देश के विभिन्न भागों में लागू करने की योजना बनाई। फलस्वरूप 2 अक्तूबर 1952 यानी गांधी जयंती के दिन इसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया। अपने उद्घाटन भाषण में भाव–विह्वल हो कर पंडित नेहरू ने कहा था "जो कार्य आज हम शुरू करने जा रहे हैं वह मातृ–भूमि की सेवा में है। यह उस धरती की सेवा में है जिसके हम सभी अंग हैं। हमें अपने मेहनत के पसीने से इसे सींचना है। यदि आवश्यकता पड़ी तो हम अपना खून भी बहा सकते हैं ताकि लाखों–लाख गरीब ग्राम– वासियों के जीवन स्तर में सुधार आ सके और उनका चहुंमुखी विकास हो सके।"

पहले वर्ष सामुदायिक परियोजना के प्रति लोगों का उत्साह देखकर दूसरे ही वर्ष यानी 1953 में पूरे देश भर में राष्ट्रीय विस्तार सेवा प्रखण्डों की स्थापना हुई और हर प्रखण्ड को तीन वर्ष के अन्दर 7.5 लाख रुपये का अनुदान दिया गया। साथ ही सामुदायिक विकास प्रखण्ड की अनुदान की राशि 22 लाख से घटाकर 15 लाख कर दी गई। इस तरह पहली पंचवर्षीय योजना के अंत तक देश में 1,114 प्रखण्डों का गठन हो गया जिसके अन्दर 1,63,000 गांवों की एक करोड़ 10 लाख आबादी को शामिल कर लिया गया। लेकिन इस तरह के तीव्रगामी विस्तार से बहुत सारी प्रशासनिक समस्याएं पैदा हो गई जिनमें सेवियों की संख्या की कमी की समस्या भी थी। सामुदायिक विकास के लिए समय–सीमा निर्धारित की गई और ऐसा लगने लगा कि सचमुच में गांवों का पुनः उद्धार हो जाएगा। लेकिन शीघ्र ही उस उत्साह की चिंगारी की ज्वाला धूमिल होती दिखाई पड़ने लगी। फलस्वरूप योजना आयोग ने इन कार्यक्रमों का आकलन और मूल्यांकन करना शुरू कर दिया ताकि इसके आधार पर दूसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार की जा सके। इसी क्रम में संगठनात्मक परिवर्तन भी किए गए जिसके अन्दर सामुदायिक विकास मंत्रालय का गठन भी शामिल है लेकिन 1957–58 के आसपास जब प्लान प्रोजेक्ट समिति की सिफारिश आई तो उसने यह स्पष्ट शब्दों में इंगित किया कि सामुदायिक विकास की गति धीमी पड़ गयी है और लाभ गरीब जनता को न मिलकर प्रबुद्ध वर्ग को ही मिला है। इस बात को ध्यान में रखते हुए बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर जन–सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए त्रि–स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू करने की बात की गई जिसे अमली जामा 2 अक्तूबर 1959 को पहनाया गया।

जहां तक ग्रामीण विकास का संबंध है इसका एक बहुत ही महत्वपूर्ण और संवेदक अंग है कृषि। इसकी अहमियत को ध्यान में रखते हुए तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन को सामुदायिक विकास से अधिक

प्राथमिकता दी गई। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामुदायिक विकास आंदोलन के प्रभावी होने का मानदण्ड कृषि के क्षेत्र में उत्पादकता की बढ़ोतरी को मान लिया गया। योजना में जो महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए उनमें थे कृषि का प्रतियोजित बजट में प्रावधान, ग्राम सेवक के कार्यक्षेत्र को बढ़ाया गया, जिसमें कृषि, सहकारिता और पंचायत उसकी अहम् भूमिका बताई गई। साथ ही कृषि ग्रामीण योजना पंचायतों तथा सहकारी समितियों द्वारा बनाई जानी थी। प्रखण्ड को योजना की इकाई की रूप में स्वीकार किया गया तथा उसी के अंतर्गत पंचायत के कार्यक्रमों को भी रखा गया। समाज के कमजोर वर्ग और गरीब तबके के लोगों की आर्थिक दशा सुधारने पर विशेष बल दिया गया और गांवों में बेकारी की समस्या को दूर करने के लिए सहकारी समितियों के माध्यम से ग्रामोद्योग को बढ़ावा देने की बात की गई। संक्षेप में, तीसरी पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य थे :

1. स्थानीय मानव संसाधनों और स्थानीय संसाधनों का उगाहीकरण;
2. कृषि की उत्पादकता में वृद्धि;
3. समाज के कमजोर वर्गों की विशेष सुरक्षा और जिला प्रशासन की कार्य–कुशलता में वृद्धि।

इन प्रयासों के बावजूद तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक ग्रामीण विकास के जो परिंणाम सामने आए, उनसे पता लगा कि ग्रामीण जनसंख्या का 80 प्रतिशत इसके लाभों से वंचित रह गया। अतः भूखमरी की समस्या और खाद्यान्न की समस्या हमारे समाने ज्यों की त्यों मुंह बाए खड़ी रही बावजूद इसके कि हरित क्रांति का प्रारंभ हो चुका था। अतः सरकार ने चौथी पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्षें में यानी 1971 में स्माल फारमर्स डेवलप्मेन्ट एजेन्सी (एस.एफ.डी.ए.) नामक इकाई देश के 46 चुने हुए जिलों में छोटे किसानों को कर्ज और कृषि सम्बन्धी मूलभूत सामग्री मुहैया कराने के लिए गठित की। इसी से मिलता–जुलता एक दूसरा कार्यक्रम शुरू किया गया जिसे मार्जिनल फारमर्स एण्ड लेबरर्स एजेन्सी, एम.एफ.एल.ए. का नाम दिया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य छोटे किसानों तथा कृषि मजदूरों की आर्थिक दशा सुधारना था। लेकिन ये कार्यक्रम भी बहुत अंशों में असफल ही रहे क्योंकि इन कार्यक्रमों में क्षेत्रीय अवधारणा का अभाव था। साथ ही समाज–सेवा और बुनियादी ढांचे का निर्माण इसकी परिधि के बाहर था।

इन कार्यक्रमों के अलावा चौथी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत और दूसरे कार्यक्रम जैसे ड्राउट प्रोन एरिया प्रोग्राम (डी.पी.ए.पी), हिल एरिया डेवलपमेन्ट (एच.ए.डी.) तथा ट्राइबल एरिया डेवलपमेन्ट प्रोग्राम (टी.ए.डी. पी.) भी विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के लिए और फसलों तथा जलवायु को ध्यान में रखते हुए अलग–अलग ढंग से लागू किए गए जिनके तहत कृषि, लघु तथा मध्यम सिचाई, जंगल लगाना, भूमि के कटाव को रोकना, पशुओं की नस्ल में सुधार, सड़कों का निर्माण और पीने के पानी जैसी जन–सुविधाओं का मुहैया कराना शामिल था। लेकिन दुर्भाग्यवश ये कार्यक्रम आशाओं की कसौटी पर खरे नहीं उतरे क्योंकि योजना और उसके लागू करने के स्तर पर ही बहुत से विनाशकारी तत्व उसमें शामिल हो गए।

इसी के समानान्तर 1970 में एक और कार्यक्रम चलाया गया जिसे पाइलर रिसर्च प्रोजेक्ट इन ग्रोथ सेन्टर्स नाम दिया गया। कार्यक्रम समन्वित क्षेत्र नियोजन के सिद्धांत पर देश के चुने हुए 20 प्रखण्डों में लागू किया गया। इस परियोजना का वित्तीय भार खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालयों ने वहन किया और सहायता राशि के रूप में फोर्ड फाउन्डेशन से भी मदद मिली। इन्हीं वर्षों में गरीब जनता को दो जून की रोटी मुहैया कराने के लिए फूड फार वर्क जिसका बाद में नाम बदल कर अंत्योदय रखा गया, चलाया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना तक इसमें कोई संदेह नहीं कि ग्रामीण विकास के अनेक प्रयास किए गए और देश के खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने में भी प्रयास जारी रहे। यह वही काल है जिसमें श्रीमती इंदिरा गांधी ने व्यावसायिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया था और गरीबी हटाओ का नारा भी दिया। लेकिन इस अवधि का यदि हम लेखा–जोखा निकालें तो ऐसा लगता है कि स्थानीय स्तर की नौकरशाही और समाज के दबंग तबकों के बीच मिलीभगत के चलते लाभ रेखांकित व्यक्तियों तक नहीं पहुंच पाए और बीच में ही उनका क्षरण हो गया। लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन कार्यक्रमों का परिणाम बिल्कुल नगण्य रहा। इन कार्यक्रमों को आंशिक सफलता अवश्य मिली साथ ही जनता के अन्दर थोड़ी बहुत जागरूकता भी आई। अतः लेखा–जोखा में हानि अधिक और लाभ कम रहा।

इसमें कोई शक नहीं कि पहली पंचवर्षीय योजना से लेकर आज तक गांव की गरीबी पर चहुंमुखी प्रहार किया गया है और कुछ हद तक हमें सफलता भी मिली है। लेकिन मनोवांछित सफलताएं न मिलने का मुख्य कारण विगत दशकों में पंचायती राज व्यवस्था की दुर्दशा, नौकरशाही के निहित स्वार्थ और राजनीतिक इच्छा–शक्ति की कमी रही है।

पंचायती राज के महत्व का एहसास

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में दूसरा मील का पत्थर पांचवीं पंचवर्षीय योजना को माना जा सकता है। यह वह काल है जिसमें ग्रामीण विकास से संबंधित पूर्व के कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने तथा पंचायती राज संस्थाओं की कमजोरियों का पता लगाने के लिए अशोक मेहता समिति का गठन किया गया था। इस समिति की सिफरिशों के दायरे बहुत विस्तृत थे जिसके तहत प्रखण्ड स्तरीय नियोजन को प्रभावकारी बनाना, पंचायती राज संस्थाओं को योजना बनाने और उसके क्रियान्वयन का सबल यंत्र बनाना और स्वंयसेवी संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने की दिशा में प्रयास करना था। अतः अशोक मेहता समिति की कई उप–समितियां भी बनीं जैसे–प्रखण्ड स्तरीय योजना के लिए दांतवाला उप समिति और स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए शिव रमण समिति का भी गठन किया गया।

अशोक मेहता समिति ने ग्रामीण विकास के क्षेत्र में असफलता और पंचायती राज संस्थाओं की निष्क्रियता के संदर्भ में जो कारण बताए उनमें प्रमुख थे – पंचायती राज संस्थाओं में निहित स्वार्थों का उदय, केन्द्रीय और राज्य सरकारों में राजनीतिक इच्छा–शक्ति का अभाव तथा उचित आर्थिक संसाधनों का अभाव। इन सारी बातों के बावजूद समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि पंचायती राज संस्थाओं की संरचना, अधिकार, कर्त्तव्य, आर्थिक और प्रशासनिक संसाधनों का उपयोग, इन सबका गया और जनता को सत्ता में सही भागीदारी देने की बात कही गई। ग्रामीण विकास सरकारी बजट के दृष्टिकोण से भी इस अवधि में काफी महत्वपूर्ण रहा।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

इस कड़ी का एक अंग था समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम। इसके तहत ग्रामीण विकास की मुख्य दिशा निर्धारित करते समय कहा गया कि :

सूखा बहुल कार्यक्रम जैसे विशेष कार्यक्रमों के तहत मरुस्थलीकरण के प्रभावों को रोकने के प्रयास जारी

निर्धारण ग्रामीण विकास प्रबन्धन के क्षेत्र में पैदा होने वाली क्रियात्मक आवश्यकताओं के आधार पर होना चाहिए। साथ ही समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह भी इंगित किया कि आज का ग्रामीण विकास प्रबन्धन बहुत चुनौतीपूर्ण हो गया है और उसकी आकांक्षाओं को सामुदायिक विकास योजना के संरचना द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। उसके लिए संरचनात्मक और संगठनात्मक दोनों तरह के परिवर्तन आवश्यक हैं। साथ ही समिति की सिफारिश में समन्वित ग्रामीण विकास पर विशेष बल दिया गया और पंचायती राज संस्थाओं को अधिकाधिक शक्ति देने और प्रभावकारी बनाने की अनुशंसा की गई।

इन्हीं सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए पंचायती राज के संम्बन्ध में जिला पंचायत और मण्डल पंचायत को लागू करने का संकल्प दोहराया

- गरीब जनता की दशा सुधारने के लिए उन्हें लाभप्रद रोजगार मिलना चाहिए;
- रोजगार के अवसर बढ़ाते समय विज्ञान और तकनीकी का अत्यधिक प्रयोग होना चाहिए ताकि स्थानीय संसाधनों जैसे मानव, पशु, पेड़ पौधों, भूमि, जल, खनिज आदि का सही उपयोग हो सके,
- कार्यक्रम इतना स्पष्ट हो कि उसको लागू करने में और उसकी आर्थिक उपादेयता को सुनिश्चित कराने में कोई कठिनाई आड़े न आए और लोगों को आत्म–निर्भर बनाया जा सके,
- संसाधनों का इस तरह प्रयोग किया जाए ताकि जो भी हमारे पास संसाधन हैं उनका सही उपयोग करते हुए उन्हें भविष्य के लिए भी सुरक्षित रखा जा सके।

इसी दिशा में 1979 में एक और नया प्रयास किया गया जबकि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत उद्योग, नौकरी तथा व्यापार (आई.एस.बी.) उपागमों को जोड़ा गया तथा खादी और ग्रामोद्योग आयोग को भी सबल बनाने का प्रयास किया गया। समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के अंतर्गत ढांचागत परिवर्तन भी किए गए जिसके अंतर्गत एस.एफ.डी.ए. को समाप्त कर जिला स्तर पर अप्रैल 1981 में जिला ग्रामीण विकास संस्था (डी.आर.डी.ए.) की स्थापना की गई। उसी के अंतर्गत समन्वित ग्रामीण विकास योजना के कार्यक्रमों का प्रशासन किया जाना था। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के मुख्य अवयव आई.एस.बी. के अलावा ग्रामीण बेरोजगार युवाओं के लिए ट्राईसेम नामक योजना तथा ग्रामीण बेरोजगार महिलाओं के लिए डवाकरा नामक कार्यक्रम भी लागू किया गया लेकिन 1985 के मई माह में पी.ई.ओ. के द्वारा जो सर्वेक्षण किया गया उसमें समन्वित ग्रमीण विकास योजना के सम्बन्ध में कोई उत्साहवर्धक विचार उभर कर नहीं आए क्योंकि उसके अनुसार समन्वित ग्रामीण विकास योजना में जो स्थायी संपत्ति लगी उसका 31 प्रतिशत तो बिल्कुल ही विलुप्त हो गया तथा 20 प्रतिशत बीमारी और मृत्यु के शिकार हुए। सर्वेक्षण में दर्शाया गया कि 90 प्रतिशत लाभार्थियों ने स्वीकार किया कि उन्हें लाभ पहुंचा है तथा रोजगार के क्षेत्र में 90 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। लेकिन कुछ स्वतंत्र संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा कराए गए मूल्यांकनों का निष्कर्ष इससे कुछ भिन्न ही रहा। यह वह काल था जिसमें स्वर्गीय राजीव गांधी प्रधान मंत्री थे और उन्होंने ग्रामीण विकास को अपनी प्राथमिकता माना था। इन सर्वेक्षणों के परिणाम को देखते हुए उन्होंने जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में कार्ड का गठन किया। इस दौरान राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) का जो मूल्यांकन आया, वह भी संतोषजनक नहीं था जिसके विषय में स्वर्गीय राजीव गांधी ने कहा था कि इनमें व्यय किए गए पैसे का मात्र पंद्रह प्रतिशत ही लाभार्थियों तक पहुंच पाता है, बाकी पैसा बीचौलियों तथा नौकरशाही द्वारा हड़प लिया जाता है।

इन सारी कमियों के बावजूद भी छठी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया। इस योजना के दौरान लाभार्थियों का जो लक्ष्य रखा गया वह था 35 लाख परिवार जिसके अन्दर 20.4 लाख पुराने लाभार्थी भी शामिल थे। फिर भी 14.60 लाख नये परिवारों को इस लाभ के अन्दर शामिल करने की बात कही गई। इस तरह 1987 में जो वित्तीय और भौतिक लक्ष्य थे वे इस तरह थे – केन्द्रीय तथा राज्य सरकार की अनुदान राशि 543.33 करोड़ रुपये, केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी 277.31 करोड़ रुपये तथा ऋण की राशि 870.12 करोड़ रुपये थी। जहां तक भौतिक प्रगति का प्रश्न है उसके आंकड़े कुछ इस प्रकार हैं – सहायता मिले हुए परिवारों की संख्या 35 लाख, अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजातियों की संख्या 30 लाख, और इन सारी बातों के अनुश्रवण के लिए राज्य मुख्यालय पर एक अनुश्रवण समिति गठन की गई जो कि सातवीं पंचवर्षीय योजना तक चलती रही। अनुश्रवण समिति की अनुशंसा को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकारों को यह भी दिशा–निर्देश दिया गया कि वे उनकी अनुशंसाओं को शीघ्रातिशीघ्र लागू करें तथा कार्यक्रम को अत्यधिक प्रभावी बनाएं। राज्य मुख्यालय से लेकर जिला और प्रखण्ड स्तर तक आंतरिक आकलन की भी व्यवस्था की गई। साथ ही लाभार्थियों को अधिक–से–अधिक कर्ज मुहैया कराने के लिए ग्रामीण उद्योग के क्षेत्र में जिला उद्योग केन्द्रों को मजबूत करने की बात कही गई।

यदि हम 1960–61 से लेकर पांचवी पंचवर्षीय योजना तक ग्रामीण विकास को परिप्रेक्ष्य में देखें तो ऐसा लगता है कि गरीबी 45–46 प्रतिशत के इर्द–गिर्द ही रही। यहां तक की हरित क्रांति के समय में भी गरीबी की कोई खास अंतर नहीं दिखाई दिया। इन सारी बातों से यह साफ जाहिर होता है कि कोई जरूरी नहीं कि सामाजिक न्याय तथा आय में वृद्धि आर्थिक विकास का स्वाभाविक परिणाम ही हो। यदि हम सचमुच में गरीबी को हटाना चाहते हैं तो इसके लिए समन्वित ग्रामीण विकास एवं रोजगार के विशिष्ट कार्यक्रमों पर विशेष बल देना होगा।

अतः यदि हम छठी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास की व्यूह रचना को देखें तो वह मुख्यतः तीन तत्वों पर अधिक बल देता है:

- व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यक्रमों को उस तरह के कौशल तथा दिहाड़ी रोजगार योजना से जोड़ना जिससे स्थायी संपत्ति निर्मित या अर्जित की जा सके।
- विभिन्न क्षेत्रों के क्षेत्रीय कृषि और मौसम की परिस्थितियों को देखते हुए आर्थिक संसाधनों को जुटाया जाना।
- गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले समूहों को सामाजिक सेवाओं तथा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के तहत मदद की जाना ताकि उनके जीवन–स्तर में सुधार हो सके तथा गरीबी उन्मूलन के लिए एक सुदृढ़ ढांचा तैयार हो सके।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए सातवीं योजना के बीच में ही तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी ने रोजगार कार्यक्रमों को बढ़ावा देना और सामाजिक संपत्ति सृजित करने के उद्देश्य से एन.आर.ई.पी. तथा आर.एल.ई.पी. को मिला कर एक नई योजना चलाई जिसे जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.) कहते हैं। यह उसी अवधि की बात है जब श्री राजीव गांधी ने पंचायती राज संस्थाओं को प्रभावी बनाने के लिए उन्हें संवैधानिक दर्जा देने का संकल्प दोहराया तथा एल.एम. सिंघवी समिति, वी.एन. गाडगिल समिति, हनुमन्थाराव समिति आदि अनेकों समितियों का गठन किया तथा जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत केन्द्रीय सहायता राशि डी.आर.डी.ए. के माध्यम से न भेजकर सीधे ग्राम पंचायतों को भेजने का आदेश दिया।

पंचायतों को संवैधानिक दर्जा

इन सारे निर्देशों के साथ ही सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 20,000 करोड़ रूपये ग्रामीण विकास पर खर्च करने के बावजूद भी गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का प्रतिशत 39 से कम नहीं हो पाया।

अप्रैल 1999 में 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को कानूनी जामा पहनाया गया। ग्रामीण विकास में जनता की सही भागीदारी हो इसके लिए आरक्षण तथा विशिष्ट आरक्षण की बात कही गई, साथ ही साथ आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 30,000 करोड़ रुपये ग्रामीण विकास पर खर्च करने का प्रावधान किया गया। इसी योजना, के दौरान

ग्रामीण विकास के कुछ और नए कार्यक्रम जैसे – सुनिश्चित रोजगार योजना (ई.ए.एस.), वृद्धावस्था पेन्शन योजना, राजीव गांधी राष्ट्रीय पेय जल योजना, समन्वित बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण आवास योजना, जल संभरण प्रबन्धन आदि कई नई योजनाऐं शुरू की गईं जिनमें कुछ तो शत प्रतिशत केन्द्रीय सहायता, कुछ 80:20 के अनुपात में तथा कुछ 50:50 के अनुपात में राज्य एवं केन्द्र सरकार की सहायता से चलाई गई। इस दौरान पंचायती राज संस्थाओं को नए संविधान संशोधन के अन्तर्गत फिर गठित किया गया। जिला नियोजन समीतियों के माध्यम से जिला नियोजन को प्रभावकारी बनाने की चेष्टा की गई और पंचायती राज संस्थाओं की मदद से ग्रामीण गरीबी पर सीधा प्रहार किया गया। फिर भी गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में मात्र दो प्रतिशत की ही गिरावट आई। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि ग्रामीण विकास की दिशा में हमारे प्रयास सफल नहीं हुए। वास्तविकता तो यह रही कि जिस अनुपात में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की संख्या घटी उससे कहीं ज्यादा अनुपात में ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि दर्ज की गई। इसके फलस्वरूप जहां एक तरफ गरीबी रेखा को नीचे खिसकना चाहिए वहीं दूसरी ओर गरीब तबके के जनसंख्या में वृद्धि ने उस रेखा को ओर ऊपर नहीं तो स्थिर कर दिया और वही हाल कमोवेश आज भी है। इसीलिए अब ग्रामीण विकास के क्षेत्र में एक ही साथ दो तरह के प्रयास जारी हैं। एक जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाना और दूसरा गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों में से ज्यादा से ज्यादा को इस रेखा से ऊपर लाना।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि ग्रामीण विकास की दिशा में हमारे प्रयास सफल नहीं हुए। वास्तविकता तो यह रही कि जिस अनुपात में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की संख्या घटी उससे कहीं ज्यादा अनुपात में ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि ने उस रेखा को और ऊपर नहीं तो स्थिर कर दिया और वही हाल कमोवेश आज भी है।

नवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास पर विशेष बल देने की बात कही गई तथा नवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में ग्रामीण विकास पर 90,000 करोड़ खर्च करने की बात कही गई। नवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास मंत्रालय के द्वारा कराए गए मूल्यांकन के आधार पर तथा अन्य स्वतंत्र मूल्यांकनों के आधार पर इस पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत कुछ कार्यक्रमों में भी बदलाव लाया गया है। स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना 1999 में लागू की गई है। इसके तहत पुराने कार्यक्रम जैसे–समन्वित ग्रामीण विकास योजना टाइसेम, डवाकरा, गंगा कल्याण योजना, दस लाख कुओं की योजना तथा सिटरा का इसमें विलय कर दिया गया है तथा आर्थिक विकास के लिए विशिष्ट क्षेत्रों के लिए विशिष्ट योजनाएं चलाए जाने की बात कही गयी है।

पहली अप्रैल 1999 से जो ग्रामीण विकास के लिए कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं वे हैं – जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, राजीव गांधी राष्ट्रीय पेय जल योजना, ग्रामीण आवास योजना जिसके अंतर्गत इंदिरा आवास योजना, क्रेडिट कम सबसीडी फार रूरल हाउसिंग, इनोवेटिव स्ट्रीम फार रूरल हाउसिंग और हैबिटाटं डेवेलपमेंट, रूरल बिल्डिंग सेन्टर्स, समग्र आवास योजना। इसके बाद कुछ अन्य कार्यक्रम हैं – केन्द्र सरकार द्वारा चलाया जा रहा ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय वृद्ध पेन्शन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना।

भूमि संसाधनों से सम्बन्धित कार्यक्रमों में जो प्रमुख हैं, वे हैं – डी.पी.ए.पी. डी.डी.पी, वेस्टलैन्ड डेवलपमेंट तथा भूमि सुधार। इन कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाने के लिए और उन्हें सही प्रशासकीय तथा तकनीकी सहयोग प्रदान करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा कपार्ट के माध्यम से अन्य तकनीकी एवं आर्थिक सहायता मुहैया करने तथा जिला ग्रामीण विकास संस्थाओं को प्रभावकारी बनाने के लिए मंत्रालय के अन्दर एक अनुश्रवण तथा मूल्यांकन के लिए एक स्वतंत्र सेल की स्थापना की है।

इसमें कोई शक नहीं कि पहली पंचवर्षीय योजना से लेकर आज तक गांव की गरीबी पर चहुंमुखी प्रहार किया गया है और कुछ हद तक हमें सफलता भी मिली है। लेकिन मनोवांछित सफलताएं न मिलने का मुख्य कारण विगत दशकों में पंचायती राज व्यवस्था की दुर्दशा, नौकरशाही के निहित स्वार्थ और राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी रही है। इन सबके बावजूद यदि ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों की असफलता का हम गहन परीक्षण करें तो ऐसा लगता है कि इसका मौलिक कारण ग्रामीण ढांचे के अन्दर द्वेष तथा ग्रामीण स्तरीय आर्थिक और सामाजिक संबंध रहे हैं।

जब तक इन दो सम्बन्धों में आमूलचूल परिवर्तन नहीं होता और नई संस्थाएं गठित नहीं होतीं तब तक सम्पूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति दिवास्वप्न ही रहेगी। ग्रामीण समाज की शक्ति संरचना आज भी कुछ ऐसी है जिससे सामाजिक न्याय की कल्पना करना बिल्कुल निराधार है। अतः ग्रामीण विकास को हमें एक सामाजिक परिवर्तन के रूप में देखना होगा जो प्रारम्भिक दिनों में शक्ति संरचना के लिए द्वन्द्वात्मक भी साबित हो सकता है। नीतिगत स्तर पर यह मान कर चलना होगा कि ग्रामीण विकास सकल प्रक्रिया नहीं होगी। कभी–कभी तो जैसा कि हमें बिहार में देखने को मिल रहा है–ग्रामीण संरचना के निहित शक्ति संरचना के साथ क्रांति जैसी स्थिति भी पैदा हो सकती है।

यहां यह भी ध्यातव्य है कि ग्रामीण स्तर का जो सरकारी तंत्र और नौकरशाही रचना है वह गरीबों के लिए बनाए गए ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए पर्याप्त नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि ग्रामीण स्तरीय नौकरशाही गरीब की निगाहों में अपनी साख खो चुकी है। अतः जनता की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए ग्राम स्तर पर जन संगठनों का उदय होना, प्राथमिक आवश्यकता महसूस होती है।

(शेष पृष्ठ 42 पर)

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना : एक समीक्षा

डा. कैलाश चन्द्र पपनै

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के तहत रोजगार सृजन

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना पहले से चल रही जवाहर रोजगार योजना का संशोधित रूप है। परन्तु इसमें और जवाहर रोजगार योजना में फर्क यह है कि अब रोजगार सृजन से अधिक जोर गांव में लोगों की मांग पर स्थायी परिसम्पत्तियों के निर्माण पर दिया जाता है। इस नई योजना के लिए पंचायतें 50,000 रुपये तक के कार्य को ग्राम सभा की अनुमति से मंजूरी दे सकती हैं। योजना के लिए 75 प्रतिशत धन केन्द्र सरकार और 25 प्रतिशत संबंधित राज्य सरकार द्वारा दिया जाता है। इस वित्त वर्ष के सात महीनों में इस योजना के लिए आबंटित राशि में से 46 प्रतिशत राशि खर्च की जा चुकी थी।

ग्रामीण विकास के काम में तेजी लाने के उद्देश्य से समय–समय अनेक योजनाएं प्रारम्भ की गईं और जब भी आवश्यकता हुई उनमें आवश्यक संशोधन भी किए गए। जवाहर ग्राम समृद्धि योजना एक ऐसी ही योजना है जो कि 1989 में प्रारम्भ की गई जवाहर रोजगार योजना का संशोधित रूप है। जवाहर रोजगार योजना ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी उन्मूलन की एक प्रमुख योजना थी जिसे वर्ष 1989 में पहले से चल रही दो ग्राम विकास योजनाओं का परस्पर विलय करके गठित किया गया था। पहले से चल रही उन दो योजनाओं का नाम था – राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम। समय के साथ फिर से परिवर्तन की आवश्यकता उत्पन्न हुई और अब यह जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के नए रूप में सामने आई है। इसे पहली अप्रैल 1999 से लागू किया गया है।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना को वर्तमान स्वरूप में लागू करने के पीछे मुख्य धारणा यही रही है कि ग्रामीण विकास की और बेरोजगारी उन्मूलन की इस योजना को लागू करने का अधिकार विकेन्द्रित होकर पंचायतों के हाथ में पहुंचे। जवाहर ग्राम समृद्धि योजना का उद्देश्य इसकी पूर्ववर्ती जवाहर रोजगार योजना से इस अर्थ में भिन्न है कि अब रोजगार सृजन से भी अधिक महत्व गांव में लोगों की मांग पर स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण करना तथा ग्रामीण विकास के लिए सामुदायिक ढांचा तैयार करना है। जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के अन्तर्गत जारी किए गए निर्देशों के अनुसार जिन कामों को प्राथमिकता दी जानी है उनमें अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के आवास– स्थलों तथा बस्तियों में बुनियादी ढांचा तैयार करना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के लिए सहायक ढांचागत सुविधाएं प्रदान करना, ग्राम पंचायत में कृषि संबंधी गतिविधियों में सहायक ढांचागत सुविधाओं का निर्माण करना, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सड़क जैसी सामुदायिक ढांचागत सुविधाओं का निर्माण तथा अन्य प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और भौतिक ढांचा सुविधाओं का निर्माण जैसी बातों को शामिल किया गया है।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के नीति–निर्देशों में इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि गांव पंचायतें योजना के अन्तर्गत कार्यक्रमों को मंजूरी देते समय इस बात का भी ध्यान रखें कि न्यूनतम बुनियादी सेवा या केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित किसी अन्य योजना के अन्तर्गत भी ऐसे ही काम तो नहीं किए जा रहे हैं। दोनों प्रकार की योजनाओं के बीच

ायी परिसम्पत्तियों का निर्माण

तालमेल अवश्य किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के अन्तर्गत ग्रामीण सड़क का निर्माण किया जाता है तो कोलतार बिछाकर सड़क को पक्का बनाने का काम किसी अन्य योजना के तहत किया जा सकता है।

केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित जवाहर ग्राम समृद्धि योजना को पंचायत स्तर पर लागू किया जाता है। दिल्ली और चंडीगढ़ को छोड़कर देश के बाकी सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में प्रत्येक पंचायत द्वारा जवाहर समृद्धि योजना को अपनाया गया है। ग्राम पंचायतों को इस कार्यक्रम के अर्न्तगत योजना तैयार करने और उस पर अमल का पूरा अधिकार है। कार्यक्रमों को ग्राम सभा की मंजूरी के बाद ही लागू किया जा सकता है। ग्राम पंचायतें 50,000 रुपये तक की परियोजनाओं को लागू करने का फैसला लेने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें इसके लिए किसी प्रकार की तकनीकी या प्रशासनिक मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। परन्तु 50,000 रुपये से अधिक की परियोजनाओं के लिए ग्राम पंचायतों को ग्राम सभा की मंजूरी लेने के अलावा उपयुक्त अधिकारियों से तकनीकी तथा प्रशासनिक मंजूरी लेनी होती है।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के अन्तर्गत आबंटित की गई धनराशि का 22.5 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए निर्धारित होता है। आबंटित राशि का तीन प्रतिशत हिस्सा विकलांगों के लिए अवरोधमुक्त ढांचे के निर्माण पर खर्च करने का प्रावधान है। योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा पंचायतों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में धन आबंटित किये जाने का प्रावधान है। पहले गांव की 10,000 से अधिक की जनसंख्या को भी 10,000 तक ही मान कर मदद देने का जो प्रावधान था, उसे अब बदल दिया गया है। अब यह सीमा समाप्त कर दी गई है।

अब गांव की परिसम्पत्तियों के ठीक से रख–रखाव की आवश्यकता को पहले से अधिक स्पष्टता के साथ स्वीकार किया गया है। इस मद पर पहले 10 प्रतिशत राशि का प्रावधान था जिसे बढ़ाकर अब 15 प्रतिशत कर दिया गया है। केन्द्र सरकार द्वार प्रायोजित इस योजना के लिए 75 प्रतिशत धन केन्द्र सरकार द्वारा और 25 प्रतिशत धन संबद्ध राज्य सरकार द्वारा दिया जाता है। केन्द्र शासित क्षेत्रों के मामले में शत प्रतिशत व्यय का वहन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है। वर्ष 1999 में जब पहली अप्रैल को जवाहर समृद्धि योजना का काम प्रारम्भ किया गया तो इस खाते में जवाहर रोजगार योजना के पिछले बचे हुए 457.01 करोड़ रुपये भी आ गए थे। इसके अलावा इस वित्त वर्ष के लिए केन्द्र सरकार ने 1,655 करोड़ रुपये आबंटित किए। इसके साथ ही राज्यों का हिस्सा 550 करोड़ रुपये का बना। अक्तूबर 1999 तक केन्द्र सरकार 7,889.55 करोड़ रुपये जारी कर चुकी थी। ग्रामीण विकास मंत्रालय को प्राप्त सूचना के अनुसार इस वित्त वर्ष के अक्तूबर माह तक के सात महीनों में उपलब्ध धन के 46.11 प्रतिशत का उपयोग वांछित कार्यक्रमों में किया जा चुका था। अनुसूचित ज़ाति और जनजाति के लिए व्यक्तिगत लाभार्थी योजना के अन्तर्गत लगभग 154.54 करोड़ रुपये का इस्तेमाल किया जा चुका था। इसका अर्थ है कि इस वर्ग के लिए निर्धारित राशि का पूरा उपयोग कर लिया गया है। परन्तु इसके विपरीत विकलांगों के लिए अवरोध मुक्त वातावरण बनाने के मामले में जागरूकता का अभाव लगता है। इस कारण आवंटित राशि का उपयोग नहीं के बराबर ही हुआ है। इसी अवधि में 1,36,863 कार्यक्रमों पर अमल पूरा हो चुका था जबकि 2,69,505 कार्यक्रमों पर काम प्रगति पर था। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वर्ग में 19,449 कार्यक्रमों पर काम पूरा हो चुका था।

ग्राम पंचायतें 50,000 रुपये तक की परियोजनाओं को लागू करने का फैसला लेने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें इसके लिए किसी प्रकार की तकनीकी या प्रशासनिक मंजूरी की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु 50,000 रुपये से अधिक की परियोजनाओं के लिए ग्राम पंचायतों को ग्राम सभा की मंजूरी लेने के अलावा उपयुक्त अधिकारियों से तकनीकी तथा प्रशासनिक मंजूरी लेनी होती है।

विकलांगों के लिए अवरोध मुक्त आवागमन संभव बनाने के लिए सिर्फ 232 कार्यक्रमों पर अमल की जानकारी प्राप्त हुई है।

योजना के नीति–निर्देशों में अब मजदूरी का अनुपात 40 प्रतिशत रखने की बाध्यता समाप्त हो गई है परन्तु यह योजना गांवों में रोजगार सृजन के सक्षम हैं यह इस बात से स्पष्ट है कि अक्तूबर 1999 के सात महीनों में 947.54 लाख मानव दिवस के रोजगार के सृजन की सूचना प्राप्त हुई है।

पिछले अनुभवों के आधार में इस योजना पर संतोषजनक प्रगति की आशा की जा सकती है परन्तु सिर्फ सात माह के आंकड़े योजना की प्रगति की समीक्षा के लिए पर्याप्त नहीं है। योजना के अमल की बहुत सी खामियों से तो दिशा–निर्देश पर ईमानदारी से अमल करके बचा जा सकता है। आखिर ये निर्देश जवाहर रोजगार योजना और ग्राम विकास की अन्य योजनाओं के अनुभव के आधार पर तैयार किए गए हैं। ❑

पिछले पचास वर्षों में भारत के ग्रामीण क्षेत्र का उत्थान

प्रयाग दास हजेला

इस समय विभिन्न कारणों से सूचना प्रौद्योगिकी पर विशेष बल दिया जा रहा है जिसकी सहूलियतों में एक यह भी है कि इसके विकास की बुनियादी विधि को पश्चिमी देशों से लेकर बढ़ावा देना इतना कठिन नहीं रह जाता है। कुटीर उद्योगों की क्षमता और उत्पादकता बढ़ाने में जो भी हमारी परम्परागत उत्पादन विधियां हैं, उनमें सुधार करना है जो नकल से कम, आर्थिक स्वावलम्बन की सोच से ज्यादा जुड़ा हुआ है। इसीलिए वह अधिक कठिन है। हम उसे कर सकते हैं पर अपनी शोध–क्षमता पर अधिक नियोजित व्यय करके और आत्मविश्वास के जरिये।

ग्रामीण क्षेत्रों में जीविका चलाने के लिए महिलाओं को हर कदम पर संघर्ष करना पड़ता है

वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की 84.5 करोड़ की जनसंख्या में 67 करोड़ जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती थी। 1981 के मुकाबले में यह साढ़े सत्तरह करोड़ अधिक है। साथ ही साथ शहरी क्षेत्रों के विकास के बावजूद देहाती इलाकों पर जनसंख्या का दबाव कुछ खास कम नहीं हुआ। 1981 में शहरी क्षेत्र की कुल जनसंख्या देश के योग का 23.3 प्रतिशत थी तो 1991 में यह केवल 2.4 प्रतिशत बढ़कर 25.7 प्रतिशत ही हो पाई। इसका अर्थ यह हुआ कि पचास वर्ष पूर्व की तुलना में जब ग्रामीण जनसंख्या कुल की 82 – 83 प्रतिशत थी, 1991 में यह घटकर 74.3 प्रतिशत पर ही टिक सकी। पचास वर्षों के अथक प्रयासों के बाद भी ग्रामीण इलाकों पर जनसंख्या का दबाव 10 प्रतिशत के करीब ही कम हो पाया है।

पश्चिमी देशों की नकल कर हमने गलत सोच अपनाई, यह तो अब हमें मान लेना चाहिए। हमारी सोच जिसके पीछे अधिकांश विदेशी प्रशिक्षण–प्राप्त बुद्धिजीवी वर्ग था, यह थी कि जैसे यूरोप और अमरीका में औद्योगिक क्रांति तथा औद्योगीकरण से गांवों से श्रम–शक्ति का पलायन स्वतः हो गया और ग्रामीण क्षेत्रों में खेतों पर कम बोझ होने, उनकी उत्पादकता, उनका मुनाफा तथा अतिरेक इतना बढ़ गया कि औद्योगीकरण न केवल ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को तीव्र गति प्रदान कर सका, बल्कि ग्रामीण विकास ने औद्योगीकरण के लिए पर्याप्त संसाधन भी मुहैया कराये। हमारे यहां इतनी अधिक जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों पर आज भी दबाव इस बात का प्रमाण है कि यदि हम दूसरों को नकल न करके अपनी परिस्थितियों को समझ कर अपनी सोच बनाते तो ज्यादा अच्छा होता। गांधीवाद में ऐसी सही सोच की झलक मिलती है।

क्या सारा दोष त्रुटिपूर्ण सोच का ही है? क्या जनसंख्या नियंत्रण नीति में कोई खराबी नहीं रही? इस बात को नकारा तो नहीं जा सकता कि कुछ अधिक सख्ती, कुछ बेहतर साक्षरता और कुछ बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं जनसंख्या वृद्धि को ज्यादा नियंत्रित रख सकते थे। परन्तु दो मौलिक मजबूरियां तो कम से कम प्रारंभ में बनी ही रहतीं। एक तो वर्तमान युग में अन्य विकासशील देशों की तरह भारत में मृत्यु–दर को आज के चिकित्सा परिवेश में, तेजी से गिरना ही था। और चूंकि जन्म–दर बहुत बड़े देशों में भी कुछ अन्तराल के बाद ही गिरती है इसलिए जनसंख्या वृद्धि की दर का तेजी से बढ़ना स्वाभाविक प्रक्रिया थी। फिर भारत में तो साक्षरता भी बहुत कम थी। तो यहां जनसंख्या विस्फोट एक असाधारण ढंग से होना ही था। परन्तु जिस घटक ने सबसे अधिक कठिनाई उत्पन्न की वह लोगों की निर्धनता और उसी से जुड़ा हुआ उनका अन्धविश्वास है। अगर बच्चे भी छुटपुट कमाई के लिए इस्तेमाल करने पड़ें, तो एक ऐसा दुश्चक्र बन जाता है जिससे निकल पाना तभी ज्यादा सम्भव है जब हम इस साक्षरता को तेजी से बढ़ाएं और गरीबी पर भी प्रत्यक्ष प्रहार करें। केरल में एक पहलू तो ठीक से चला परन्तु दूसरा अब भी कमजोर है। मेरा विचार है कि जनसंख्या नियंत्रण के लिए साक्षरता आवश्यक है परन्तु पर्याप्त नहीं है। चीन में राजनीतिक माहौल हमारे जैसा न हो परन्तु साक्षरता और गरीबी उन्मूलन से वह अधिक कारगर ढंग से निपट पा रहा है। क्या अच्छे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रजातंत्र को मोड़ा नहीं जा सकता?

रोजगार ही एक प्रमुख साधन है इनकी गरीबी दूर करने का और हमने देखा कि जिस दिशा में उच्चतम प्रौद्योगिकी सरलता से उपलब्ध है उसमें रोजगार वृद्धि की सम्भावनाएं कम हैं और जहां ये सम्भावनाएं अधिक हैं वहां ऐसी प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है जिसे हमें स्वयं ही ढूंढना पड़ेगा।

कृषि पर जनसंख्या का दबाव

यदि ऐसा मोड़ लाने में हम आज भी कामयाब हो जाएं, तो भी जनाधिक्य से उत्पन्न रुकावटें अभी आने वाले कई दशकों तक बनी रहेंगी। उदाहरण के तौर पर घटती प्रति व्यक्ति जोत का क्षेत्रफल और उससे निपटने के लिए पूंजी और प्रौद्योगिकी के अभाव की समस्या है। इतना तो स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि के साथ भूमि की कुल मात्रा तो नहीं बढ़ती चाहे जोत के क्षेत्रफल में कुछ सीमान्त परिवर्तन हो जाएं, परन्तु वह परिवर्तन भी भूमि–मानव अनुपात की गिरावट को नहीं रोक सकते। जैसे कि आंकड़े बताते हैं 1961 में प्रति व्यक्ति बोया गया क्षेत्रफल 0.3697 हेक्टेयर था जो 1971 में 0.3207, 1979 में 0.2841, 1981 में 0.2691 और 1986 में 0.2473 रह गया। भूमि की कमी को पूरा करने के लिए पूंजी का उपयोग आवश्यक हो गया है और कुल लागत के लगभग 9 प्रतिशत से बढ़कर यह हरित क्रांति के आने पर 29.30 प्रतिशत हो गया। पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश के कुछ भागों में इस क्रांति से उत्पन्न फायदे लगभग ऐसे स्तर पर पहुंच गए हैं कि नई प्रौद्योगिकी और अधिक पूंजी लगाए बगैर आगे बढ़ना कठिन है। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा इत्यादि में हरित क्रांति का पूरा लाभ उठाने में अनेक कठिनाइयां हैं, जिनमें प्रशासनिक अकुशलता के साथ संसाधनों की कमी भी एक है। मतलब यह हुआ कि सारे देश के स्तर पर कृषि उत्पादन के आगे भविष्य में इतनी तीव्रता से बढ़ने की आशा नहीं की जा सकती जितना वह पहले बढ़ चुका है। इसलिए जनाधिक्य का ग्रामीण क्षेत्रों पर दबाव कम होने के आसार नजर नहीं आते।

1972–73 में देहातों के 16.8 प्रतिशत पुरुष श्रमिक गैर–कृषिक कार्यों में काम करते थे। 1977–78 में इनकी संख्या 19.4 प्रतिशत, 1983 में 22.5 प्रतिशत और 1987–88 में 25.5 प्रतिशत हो गई। परन्तु 1993–94 और 1997 के बीच इसमें गिरावट आई। और इसलिए कह सकते हैं कि कुल मिलाकर 1987–88 से पहले के मुकाबले ग्रामीण इलाकों पर जनसंख्या का बोझ अगर बढ़ा नहीं है तो ज्यों का त्यों बना हुआ है।

शहरी रोजगार की दर

रही बात उसके शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन की, उसकी तसवीर भी कोई उत्साहवर्धक नहीं है। 1972–73 और 1977–78 के बीच शहरी रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 4.31 प्रतिशत थी जो 0.5 प्रतिशत बढ़कर 1977–78 और 1982–83 के बीच 4.36 प्रतिशत हो गई। परन्तु 1982–83 और 1987–88 के बीच यह घटकर 3.89 प्रतिशत रह गई। 1988 के बाद ये आंकड़े, संगठित उद्योग में कार्य–योग्य श्रमिकों की खपत पहले के 9 प्रतिशत के मुकाबले में आज 8 प्रतिशत से कम ही दिखाते हैं और यदि इनको शहरी रोजगार का एक महत्वपूर्ण द्योतक माना जाए तो यह नहीं कहा जा सकता कि शहरी रोजगार के वृद्धि की दर 1988 की अपेक्षा आज कोई ज्यादा होगी। 1998 में भारत सरकार के श्रम मंत्रालय द्वारा जारी किए गए आंकड़े यह बताते हैं 1980–90 के दरम्यान संगठित उद्योगों में वार्षिक रोजगार वृद्धि की दर 1.68 प्रतिशत थी जो 1990–91 के दरम्यान 0.82 प्रतिशत रह गई।

इस पृष्ठभूमि में न तो रोजगार के बहाने शहरों को पलायन करने का रास्ता बढ़ता हुआ नजर आ रहा है न ही ग्रामीण इलाकों में गैर–कृषक क्षेत्र में किसी बड़े परिवर्तन की किरण दिखाई दे रही है।

कृषि उत्पादन की स्थिति

यह अवश्य काफी जोर देकर कहा जा सकता है कि हम कृषि का भी विश्वीकरण कर स्पर्धा और तकनीकी प्रगति द्वारा ग्रामीण इलाकों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर सकते हैं। लेकिन अगर हम आंकड़े देखें तो नहीं लगता कि ऐसा निकट भविष्य में हो सकेगा। 1996–97 में कृषि और उससे जुड़ी हुई वस्तुओं का निर्यात हमारे कुल निर्यात का 20.5 प्रतिशत था जबकि 1960–61 में यह प्रतिशत 44.2 था। बिना आर्थिक सुधारों के अगर हमारे निर्यात में कृषि का प्रतिशत इतना अधिक था तो क्या उसमें गिरावट इसलिए आई कि हम उसे विदेशों में बेच नहीं सके या हमारी आवश्यकताएं ही इतनी थीं कि अतिरिक्त पूर्ति को विदेशियों को बेचने की आवश्यकता ही नहीं महसूस हुई? यदि ऐसा है तो बिना कृषि उत्पादन को तेजी से बढ़ाए ताकि आंतरिक और विदेशी दोनों बाजारों की मांग को पूरा किया जा सके, विदेशियों के लिए बाजार खोल देने से ही क्या होगा? जमीन तो बढ़ेगी नहीं, महज विदेशी मांग के आ जाने से क्या पानी, बिजली सब अपने आप एकदम बढ़ जाऐंगे? पहले आंतरिक पूर्ति की समस्या को हल करें फिर आगे की सोचें तो अच्छा नहीं होगा क्या?

1998–99 के आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया कि नब्बे के दशक में खाद्यान्नों के उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 1.7 प्रतिशत रही है जो जनसंख्या वृद्धि की दर से कम या लगभग उसके बराबर है। इसका अर्थ यह हुआ कि खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति पूर्ति इस दशक में अपरिवर्तनीय रही है।

मुख्य बात यह है कि कृषि पदार्थों की पूर्ति में अगर उपयुक्त लोच नहीं आता तो केवल निर्यात वृद्धि के प्रलोभन से मुक्त व्यापार की ओर बढ़ने से कुछ नहीं होगा। हमें याद है कि हाल ही में हमने गेहूं का निर्यात किया और फिर हमें विवश होकर उसका आयात करना पड़ा।

बुनियादी ढांचे पर खर्च

पूर्ति में उत्पादन लोच लाने के लिए पानी, बिजली जैसी आधारभूत पूर्तियों को बढ़ाने का पहले प्रयोजन करना होगा। आठवीं पंचवर्षीय योजना में आठ करोड़ हेक्टेयर भूमि के लिए अतिरिक्त सिंचाई का प्रयोजन था परन्तु हम एक करोड़ के स्तर पर ही पहुंच सके। यह सातवीं योजना के एक करोड़ 13 लाख के स्तर से भी कम है।

यह ठीक है कि सिंचाई क्षेत्र में मौजूदा सुविधाओं के इस्तेमाल में भी बहुत सी कमियां हैं जिन्हें भी दूर करना चाहिए। वाटरलोगिंग, सेलिनेटी इत्यादि समस्याएं या वाटरशेड विकास का मसला, इनसे अगर प्रभावपूर्ण ढंग से निपटा जाए तो असर पड़ सकता है। परन्तु जहां पानी नहीं और बारिश पर ही निर्भर रहना पड़ता है या जहां बाढ़ आ जाती है, वहां अपनी तरह की चुनौतियां हैं और उनके लिए अतिरिक्त संसाधनों का प्रावधान तो करना ही पड़ेगा। पता नहीं यहां भी विदेशी पूंजी निवेश सहारा देगा

भूमि का विकास करके रोजगार के अवसर बढ़ाने के प्रयास

या नहीं!

जहां तक बिजली का संबंध है, उसकी कमी होने के बारे में कोई विवाद नहीं है। सातवीं योजना काल में इसमें वृद्धि (यानी 1985–90 के बीच) 9.6 प्रतिशत की थी (यानी विश्वीकरण से पूर्व) जबकि आठवीं योजना काल में (1992–97) यह वृद्धि 5.5 प्रतिशत रह गई।

पानी और बिजली की पूर्ति में कमी कृषि उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। अगर कृषि निर्यात से ग्रामीण इलाकों पर जनसंख्या के अत्यधिक बोझ को कम करना है तो पहले हमें बुनियादी ढांचे पर वैसे ही धन व्यय करना पड़ेगा जैसे कुछ पिछली योजनाओं में किया है। मोटे अनुमानों के अनुसार राज्यों के साथ केन्द्र सरकार कोई 80 प्रतिशत योजना व्यय बिजली और सिंचाई पर खर्च कर रही थी। इधर इस व्यय में कमी आई है जिसे हम विदेशी विनियोग से पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं। अभी तक इस नीति द्वारा उत्पन्न की हुई अनिश्चितता दूर नहीं हुई है। सरकार काउंटर गारंटी भी देने को तैयार है यद्यपि यह मुक्त बाजार, जिनके हिमायती यह विदेशी निवेशक हैं; के सिद्धांतों के अनुसार, यह स्वस्थ परम्परा नहीं है। सरकार को चाहिए कि उपभोक्ताओं से ली जाने वाली बिजली की कीमत को मांग और पूर्ति के सिद्धांतों से निर्धारित न करके उन घटकों से निर्धारित करे जो एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था में उद्योग और कृषि को कुछ फायदा पहुंचाने के दृष्टिकोण से ध्यान में रखे जाते हैं। विद्युत शुल्क का निर्धारण अगर इस वृहद् परिप्रेक्ष्य को सामने रखकर नहीं किया गया तो विदेशी पूंजीनिवेश का इस क्षेत्र में आना हमारे कृषि विकास के लिए, विशेष रूप से हानिकारक हो सकता है। जिन छोटे

किसानों को हम प्रोत्साहित करना चाहते हैं या जिन्‌ गैर–कृषि कार्यकलापों को हम बढ़ाना चाहते हैं, उन सब में दिक्कतें हो सकती हैं।

ग्रामीणों के गैर–कृषि उद्योग, जिनमें कुटीर तथा कई प्रकार के छोटे उद्योग शामिल हैं, अपनी उत्पादकता बढ़ाने के लिए अधिक बिजली चाहेंगे और उनके लिए बिजली लागत को नियंत्रित रखना एक आवश्यक आर्थिक मजबूरी है। आमतौर से उनकी उत्पादकता बड़े उद्योगों के मुकाबले में बहुत कम होती है, इस कारण उनमें कार्यरत मजदूरों का वेतन भी कम होता है। इससे श्रमिकों में रोजगार होते हुए भी काफी लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं। बुनियादी ढांचा एक ऐसी आवश्यक सुविधा है जिसमें निजी क्षेत्र होते हुए भी स्पर्धा कम एवं एकाधिकार अधिक होता है। इस मजबूरी के लिए लोगों की सरकार अपने उद्योगों के माध्यम से बेहतर सहानुभूति दिखा सकती है, न कि विदेशी उद्योगों के माध्यम से।

अक्सर प्रश्न यह उठता है कि घाटे में चलकर सरकारी इकाइयां कैसे अपने चलते रहने के लिए संसाधन जुटा पाएंगी? प्रश्न जटिल है लेकिन उसके समाधान के लिए मांग और पूर्ति के सिद्धांत को ही अन्तिम निर्णायक नहीं माना जाना चाहिए। जैसे पहले कहा जा चुका है, बुनियादी ढांचा जैसी सुविधा का मूल्य–निर्धारण इसलिए गम्भीर मसला है क्योंकि यह बाह्य बचत की तरह औद्योगिक लागत से जुड़ी हुई है जिसका विकास की गति पर प्रभाव पड़ता है।

शोध पर खर्च बढ़ाने की आवश्यकता

अनेक छोटे तथा कुटीर उद्योगों में रोजगार बढ़ तो सकता है। परन्तु उनकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए जिस प्रौद्योगिकी–विकास पर शोध की आवश्यकता है उसका एहसास तो है परन्तु उस पर अमल कमजोर है।

इस समय विभिन्न कारणों से सूचना प्रौद्योगिकी पर विशेष बल दिया जा रहा है जिसकी सहूलियतों में एक यह भी है कि इसके विकास की बुनियादी विधि को पश्चिमी देशों से लेकर बढ़ावा देना इतना कठिन नहीं रह जाता है। कुटीर उद्योगों की क्षमता और उत्पादकता बढ़ाने में, जो भी हमारी परम्परागत उत्पादन विधियां हैं, उनमें सुधार करना है जो नकल से कम, आर्थिक स्वावलम्बन की सोच से ज्यादा जुड़ा हुआ है। इसीलिए वह अधिक कठिन है। हम उसे कर सकते हैं पर अपनी शोध–क्षमता पर अधिक नियोजित व्यय और आत्मविश्वास के जरिये ही।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इस समय हमारे विकास और निर्यात में वृद्धि की उज्ज्वल सम्भावनाएं हैं जिससे कारपोरेट उद्योग में श्रमिकों की खपत को घटने से रोका जा सकता है। परन्तु यह आशा करना कि यह खपत इतनी बढ़ जायेगी कि ग्रामीण क्षेत्रों पर जनसंख्या का दबाव वर्तमान स्तर से गिरकर बहुत कम हो जायेगा, व्यर्थ है। एक विशेष बात सूचना प्रौद्योगिकी की खपत बढ़ते रहने के लिए यह है कि श्रमिकों की शिक्षा का स्तर ऊंचा हो। ग्रामीण क्षेत्रों में तो खास तौर पर इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना है। इसलिए जहां सूचना प्रौद्योगिकी से रोजगार बढ़ाने के भरसक प्रयास किया जाए, वहां शिक्षा को प्रसार और गुणात्मक सुधार के लिये भी कोई कसर न छोड़ी जाए, यह भी उतना ही जरूरी है। साथ ही साथ छोटे और कुटीर उद्योगों तथा खेती की उत्पादकता को बढ़ाने से संबंधित शोध पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए।

सुनने में आया है कि केन्द्रीय बजट में शिक्षा और शोध पर व्यय बढ़ाने का प्रयास हो सकता है पर इस सिलसिले में एक शिक्षा शुल्क भी लगाया जा सकता है। अगर ऐसा हुआ तो ठीक ही होगा। केवल इतना समझना आवश्यक है कि अपनी परिस्थितियों के लिए शोध एक ऐसा मसला है जिस पर व्यय लम्बे अर्से तक चलते रहना चाहिए। इसलिए इसके लिए ऐसे स्रोत ही सोचने चाहिएं जिसका बोझ मजबूत कंधों पर पड़े। कहना कठिन है कि एक, 5 या 10 प्रतिशत का किसी प्रकार का शुल्क ऐसे ही कंधों पर पड़ेगा।

गांवों में गरीबी यदि 37 प्रतिशत मान ली जाए तो वहां लगभग 28 करोड़ गरीब बसते हैं। रोजगार ही एक प्रमुख साधन है इनकी गरीबी दूर करने का और हमने देखा कि जिस दिशा में उच्चतम प्रौद्योगिकी सरलता से उपलब्ध है उसमें रोजगार वृद्धि की सम्भावनाएं कम हैं और जहां ये सम्भावनाएं अधिक हैं वहां ऐसी प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है जिसे हमें स्वयं ही ढूंढना पड़ेगा। यह काम मांग तथा पूर्ति पर छोड़ देने का नहीं है। इसके लिए कृषि तथा छोटे और कुटीर उद्योगों की उत्पादकता और रोजगार क्षमता बढ़ाने से संबंधित शोध कार्यों को पर्याप्त साधनों के साथ लम्बे समय तक चलाने की आवश्यकता है। ❑

विशिष्ट महिला पंचायत प्रतिनिधि पुरस्कार

इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज
8, नेलसन मंडेला रोड, वसन्त कुंज
नयी दिल्ली–110 070, दूरभाष : 6137027

24 अप्रैल 2000 को **महिला सशक्तीकरण दिवस समारोह दिल्ली, बंगलूर, चेन्नई तथा भुवनेश्वर** में मनाया जायेगा।

विशिष्ट महिला पंचायत प्रतिनिधि पुरस्कारों के लिए नामांकन आमंत्रित हैं। ये पुरस्कार महिला पंचायत प्रतिनिधियों को सार्वजनिक जीवन की समृद्धि एवं पंचायतों के विकास में उनके योगदान के लिए दिये जाते हैं। इस संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए कृपया डॉ. बिद्युत मोहन्ती, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली से संपर्क करें।

8 मार्च महिला दिवस पर

क्या नई सदी में मिल पाएगा ग्रामीण महिलाओं को हक

इरा सिंह

ग्रामीण महिलाएं सारी जिम्मेदारियां निभाते हुए भी अपने हक से वंचित

नई सदी का स्वागत जोरों से हुआ और इस मास फिर हमेशा की तरह महिला दिवस मनाने का उपक्रम भी है। महिला दिवस पर हम उन महिलाओं की तरक्की का जायजा लेना नहीं भूलते जो अपने क्षेत्र में शिखर पर हैं परन्तु हम उन ग्रामीण महिलाओं को याद नहीं करना चाहते जो हमारे देश का आधार हैं। इस सदी में यदि इन महिलाओं के जीवन–स्तर में कुछ परिवर्तन आ पाएगा तो हम यह कह पाएंगे कि यह सहस्राब्दी महिलाओं की है।

सही मायनों में गत दशक में महिलाओं की स्वतंत्रता को लेकर जो

लहर चली वे शहर की महिलाओं का उद्घोष था और जो परिवर्तन महिलाओं की स्थिति में आया वह इन्हीं शहरी महिलाओं के जीवन में ही आया, चाहे वे शिक्षा का क्षेत्र हो अथवा आत्म–निर्भरता का प्रश्न।

ग्रामीण महिलाएं आज भी अपने हक की लड़ाई में स्वयं नहीं उतरी हैं। यह बहुत ही शोचनीय और विचारणीय तथ्य है कि महिला समाज का एक बड़ा तबका आजादी के पचास साल बाद भी अपने संघर्ष के प्रति विमुख है। उनकी लड़ाई लड़ने का दावा जरूर कई संस्थाएं और सरकार करती आई है परन्तु उसका प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं है।

ग्रामीण महिलाओं की समस्याएं

ग्रामीण महिलाओं की परिशानियां और समस्याएं उनकी जन्म के साथ की शुरू हो जाती हैं। लिंग परीक्षण के चलते कन्या भ्रूण की हत्या आम बात है। अब तो कन्या का जन्म भी सुरक्षित नहीं रहा। लड़कियों के प्रति असमानता का बर्ताव किया जाता है जिससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं। पांच साल की होते होते गावों में लड़कियां सभी घरेलू कार्यों में व्यस्त हो जाती हैं। घर और बाहर के कार्यों में हाथ बंटाते हुए लड़कियां बड़ी होती हैं। सरकार के अथक प्रयासों के बावजूद अंधविश्वास और गरीबी की मार इतनी अधिक है कि उनके जीवन में शिक्षा का उजाला करना बहुत कठिन कार्य है। भारत की स्वतंत्रता के स्वर्ण जंयती वर्ष तक हम देश की विशाल ग्रामीण महिला जनसंख्या में सिर्फ 27 प्रतिशत महिलाओं को साक्षर कर पाए हैं। साक्षरता की कमी के कारण पर्याप्त जानकारी और अधिकार की भावना की कमी इनमें प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। ऐसे में मौजूदा कानून व्यवस्था चाहे नारी के अधिकारों की कितनी ही पक्षधर क्यों न हो अभी भी उस हक का लाभ उठाने के लिए वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और परिस्थितियां उनके लिए मददगार नहीं हैं।

ससुराल में प्रताड़ना, पति द्वारा मार–पीट, बिना ठोस कारण के विवाहित पत्नी को छोड़ देना या पति द्वारा विवाहेत्तर सम्बंध रखना आदि समस्याओं के लिए कानून की मदद लेना आज भी उनकी सोच में शामिल नहीं है। उस पर यौन शोषण जैसी दुर्घटनाओं की वो आऐ दिन शिकार होती रहती हैं। ऐसी विशाल समस्याओं का सामना करने का न तो उनके पास साहस है और न ही किसी का सहारा।

चिकित्सा के क्षेत्र में व्यापक सुविधाओं के विस्तार के बावजूद महिलाओं के स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं नजर आता। उनकी स्वास्थ्य संबंधी परेशानियों की जड़ है उनका महिला होना। बचपन में लड़की होने की वजह से उनके स्वास्थ्य को महत्व नहीं दिया जाता। कम और बचे खुचे भोजन से वे बड़ी हो जाती हैं फिर कम उम्र में शादी और फिर एक के बाद एक गर्भधारण का बोझ उठाते–उठाते उनका शरीर कम उम्र में ही परेशानियों का घर बन जाता है। खून की कमी, चक्कर आना, कमजोरी, मासिक धर्म में गड़बड़ी, कमर दर्द जैसी समस्याओं से 90 प्रतिशत महिलाएं ग्रसित हैं। यौन सम्बन्धी परेशानियों की भी कमी नहीं है। शर्म और जानकारी के अभाव में उन्हें समय पर उचित इलाज नहीं मिल पाता जिससे उनकी समस्याएं गंभीर बीमारियों का रूप धारण करती रहती हैं। वास्तव में महिलाओं के स्वास्थ्य को सुधारने के लिए कोई भी गंभीर प्रयास करते समय सर्वप्रथम हमें उन भेदभावपूर्ण सामाजिक रीतियों और सांस्कृतिक परंपराओं पर विचार करना होगा जो उनके स्वास्थ्य में बाधक हैं।

महिलाओं की आर्थिक निर्भरता

यह सच है आज के आर्थिक युग में महिलाएं अधिक स्वावलंबी हुई हैं। उनमें आत्म–विश्वास और मनोबल भी बढ़ा है। अपने अधिकारों के प्रति वे सचेत हुई है मगर महिलाओं में आर्थिक क्रांति की लहर शहरों में ही देखने को मिलती है। यह नहीं कि ग्रामीण महिला कामकाजी नहीं है परन्तु फिर भी वे आत्मनिर्भर नहीं है। इसका सबसे बड़ा कार्य है उनका असंगठित होना। 1991 की जनगणना के अनुसार 79 प्रतिशत महिला कामगार कृषि कार्यों में संलग्न थीं। ग्रामीण महिलाऐं अधिकतर असंगठित क्षेत्र में कार्य करती है इसलिए उन्हें बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। असुरक्षात्मक माहौल में कठोर श्रम के बावजूद उन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती है। उन्हें दूसरी कई सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। अपनी न्यूनतम मजदूरी से वे घर का खर्च चलाती हैं अथवा पति को लाकर देती हैं। कई बार ऐय्याश पति उनकी मेहनत की कमाई को शराब में लुटा देते हैं। गृहस्थी में शांति के लिए महिलाएं वह भी सहन करती जाती हैं। सच यह है की सामाजिक चेतना ही महिलाओं को उनके हिस्से का सुख दे पाएगी अन्यथा सरकार और संस्थाओं की कोशिशों के बावजूद आर्थिक क्रांति का नारा महज एक ढोल साबित होगा।

सुधार की उम्मीद

शिक्षा से ही ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन की उम्मीद है। समाज में उच्च मूल्यों की स्थापना के लिए महिलाओं की शिक्षा और विकास पर खास ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि इस नई सदी में महिलाएं ही विकास का आधार होंगी। अब उनकी शिक्षा सिर्फ साक्षरता और उन्हें घरेलू भूमिका के लिए तैयार करने मात्र तक सीमित नहीं होनी चाहिए। उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा के साथ लेने के लिए उनमें उत्पादकता और विभिन्न क्षेत्रों में क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए शिक्षित करना चाहिए तभी राष्ट्र का विकास सम्भव होगा।

महिलाओं में आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास में वृद्धि दूसरा कदम होगा जिसे हम महिलाओं के स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक मानेंगे। महिलाएं स्वावलम्बी हों, उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिले तभी उनमें अपने कल्याण के प्रति चेतना जागृत होगी और वे समाज से अपने लिए न्याय मांग कर सकेंगी। यह तभी संभव है जब उन्हें रोजगार के अवसर जुटाए जाएं, प्रशिक्षण दिया जाए और उनके कार्य का सही मूल्यांकन हो।

केन्द्र और स्थानीय स्तर पर महिलाओं के विकास का मुद्दा उठाना आवश्यक है और महिलाओं के संगठन और स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रभावी रूप से यह कार्य करना होगा। स्वयं महिलाओं में अपने विकास के प्रति दृढ़ इच्छा और प्रयास ही उन्हें इस सदी में अपना हक दिला पाएगा। ❑

स्त्री–बाल स्वास्थ्य:

नई सदी में नई अपेक्षाएं

आशारानी व्होरा

छोटा सा कस्बा। बीस वर्षीय युवती की अपनी ससुराल में रहते गर्भपात हो गया। कस्बाई दाई ने केस ठीक से संभाला नहीं और रक्त–प्रवाह न रुकने पर घर वालों को उसे लेकर शहर भागना पड़ा। डाक्टरों ने जांच करके बताया कि लड़की की जान को खतरा है, इसलिए आपरेशन करके गर्भाशय निकालना पड़ेगा। अब आगे वह मां नहीं बन सकेगी। यह जानकर, पति सहित सारे रिश्तेदार युवती को वहीं छोड़, खिसक लिए और लौट कर नहीं आए। आखिर लड़की के बताए पते से समीप के गांव से उसके मायके वालों को बुलाया गया। इस बीच आपरेशन की तैयारी के चलते ही युवती ने दम तोड़ दिया। यह हमारे समाज में स्त्री के स्वास्थ्य के प्रति परिवार वालों का नजरिया है; आज भी, जबकि हम 21वीं सदी में प्रवेश कर रहे हैं। सरकारी सेवाएं भी तभी न कारगर सिद्ध होंगी, जबकि महिलाएं स्वयं भी स्वास्थ्य के प्रति सचेत होंगी और उनके ससुराल परिवार वाले भी उन्हें बच्चा पैदा करने की मशीन न समझ, बेटी की तरह अपनाएंगे और उनका ख्याल रखेंगे।

एक अन्य उदाहरण – एक महिला प्रसव के लिए एक नर्सिंग होम में दाखिल हुई। कठिन प्रसव देख कर डाक्टर ने उसके पति से कहा, 'बच्चा आपरेशन से पैदा होगा, आपरेशन के समय दो बोतल खून की जरूरत पड़ेगी, आप इसके लिए जल्दी प्रबंध कर कर लीजिए।' पति ने आपरेशन की रजामंदी वाले फार्म पर अपने हस्ताक्षर कर दिए, किंतु जब खून जुटाने की बात आई तो इस डर से वहां से चुपचाप खिसक लिया कि कहीं उसे ही न खून देना पड़ जाए। परिवार के दूसरे सदस्य भी महिला को उसी तरह तड़पता छोड़ कर, खून देने के डर से वहां से चले गए। डाक्टरों ने केस–हिस्टरी में देखा था कि उस महिला के पहले चार बच्चे इसीलिए मर चुके थे कि पति आपरेशन के लिए राजी नहीं हुए थे और बच्चे पेट में मर गए थे। महिला को ही मुश्किल से बचाया जा सका था।

महिला और बाल स्वास्थ्य के

इस बार संतान की खातिर पति आपरेशन के लिए तो राजी हुआ, पर खून देने के डर से भाग निकला। खैर डाक्टरों ने खून का प्रबंध किया और आपरेशन से प्रसव करा कर मां, बच्चे दोनों को बचा लिया। सौभाग्य से बच्चा लड़का था। बाद में महिला के पति ने लिए गए खून का बिल भी चुका दिया और प्रसन्नतापूर्वक मां, बच्चे को घर लिवा ले गया।

पति ने इस बार पत्नी को अस्पताल के बजाय प्राइवेट नर्सिंग होम में इसलिए भरती कराया था कि शायद अस्पताल वालों की लापरवाही से ही उसके पूर्व बच्चे चले गए, जबकि उसने डाक्टरी सलाह न मान कर, हर बार आपरेशन से इन्कार कर दिया था। इस बार आपरेशन के लिए हामी भर कर भी वह खून देने के भय से भाग खड़ा हुआ था। बच्चा जाए या मां, उसकी बला से। उसे इतनी भी समझ नहीं थी कि उसका खून तभी लिया जाएगा, जब वह महिला के खून से मेल खाएगा (अक्सर पति का नहीं, खून के रिश्ते के किसी रिश्तेदार का खून मिला करता है)। पर पति ने डाक्टर को समझाने का मौका दिए बिना, वहां से चुपचाप चले जाना उचित समझा। उसे यह भी मालूम न था कि किसी अन्य रिश्तेदार का खून भी दिया जा सकता है और खून खरीदा भी जा सकता है। बस वह पत्नी को उसी हालत में छोड़, डाक्टर को कोई जवाब दिए बिना, खिसक

डाक्टरों ने जांच करके बताया कि लड़की की जान को खतरा है, इसलिए आपरेशन करके गर्भाशय निकालना पड़ेगा। अब आगे वह मां नहीं बन सकेगी। यह जानकर पति सहित सारे रिश्तेदार युवती को ही छोड़, खिसक लिए और लौट कर नहीं आए।

लिया और अन्य रिश्तेदारों को भी साथ लेता गया कि 'चलो, कही, तुम्हारा ही खून न ले लिया जाए।' तो नई सदी के द्वार पर खड़े देश में यह है, आम आदमी की जानकारी और महिला–स्वास्थ्य और परिवार के प्रति उसकी जिम्मेदारी की दूसरी मिसाल! ऐसी मिसालें और भी गिनाई जा सकती हैं।

देश में प्रति वर्ष दो लाख महिलाएं समय पर उचित चिकित्सा के अभाव में दम तोड़ती हैं। महिला मृत्यु–दर और शिशु मृत्यु–दर प्रसव के दौरान तथा बाद की लापरवाही से कितने आंकड़े आए दिन छपते रहते हैं। यह हाल तब है, जब दूरदर्शन द्वारा निरन्तर स्वास्थ्य संबंधी जानकारियां प्रसारित की जा रही हैं और सुरक्षित प्रसव तथा परिवार नियोजन के तरीके बताए जा रहे हैं। ऐसे में यह कहना कि आज भी लगभग लाखों दम्पत्ति परिवार नियोजन की जानकारी से अनभिज्ञ हैं और हर साल 75,000 स्त्रियां असुरक्षित गर्भपात के दौरान अपनी जान गंवा रही हैं, बहुत खेदजनक स्थिति है। अतः व्यापक जागरूकता–अभियान की जरूरत है, अन्यथा न जनसंख्या–समस्या का समाधान संभव है, न सरकारी प्रयत्नों की सफलता ही। महिला–स्वास्थ्य के प्रति समाज का नजरिया ही बदलना होगा।

परिवार की महिलाएं ही एकजुट होकर पुरूषों के एकतरफा निर्णयों को साझे निर्णयों में बदल सकती हैं। इसके लिए मीडिया की पहुंच परिवार के पुरूषों और घर की बड़ी–बूढ़ियों तक होना ही जरूरी नहीं, वह निम्न और अशिक्षित वर्गों की ओर भी केंद्रित होनी चाहिए। स्त्री–बाल स्वास्थ्य–सुरक्षा को तो परिवार नियोजन की शिक्षा में शामिल किया गया है (कम से कम नीतिगत स्तर पर अवश्य) बच्चों व महिलाओं की सामान्य शिक्षा, बच्चों की अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य भी इस कार्यक्रम के साथ जोड़ना होगा। इससे बाल मजदूरी पर और जनसंख्या–फैलाव पर जो अप्रत्यक्ष रोक लगेगी, वह किसी प्रचार–अभियान से अधिक प्रभावी सिद्ध होगी।

बाल–स्वास्थ्य : कुछ सूत्र

यद्यपि माताओं की समय समय पर दी जाने वाली जानकारियां ही इस समस्या का सही समाधान हैं, जो विभिन्न माध्यमों से दी भी जा रही है, फिर भी सूत्र रूप में उनका प्रस्तुतिकरण और उन्हें दोहराना कभी–कभी जरूरी हो जाता है, क्योंकि वह अधिक प्रभावी सिद्ध होता है। इसलिए यहां मैं वे

...त के उपेक्षा भाव में बदलाव जरूरी

उपयोगी बातें सूत्र रूप में ही दे रही हूं :

- किशोरियां व नवयुवतियां 18 वर्ष से पहले विवाह न करें। किसी मजबूरी में करा लिया हो तो 18 वर्ष की उम्र से पहले हरगिज गर्भ धारण न करें। इससे इन्कार करने की शक्ति और साहस अब उन्हें अपने भीतर जुटाना ही चाहिए।
- बच्चों के जन्म में कम से कम दो साल का अन्तर अवश्य हो और उनकी संख्या दो तक सीमित हो तो बच्चों की शिक्षा–दीक्षा और स्वास्थ्य पर उचित ध्यान दिया जा सके।
- नन्हें शिशु के लिए प्रारंभिक महीनों में मां का दूध ही सर्वोत्तम तथा पूर्ण आहार है। शिशु चार महीने का हो जाए तो उसे साथ में नरम आहार दिया जाना चाहिए। तीन साल से कम उम्र के बच्चों को दिन में पांच–छह बार भोजन देना और उनके भोजन में फल–सब्जी का समावेश करना जरूरी है। थोड़ा सा घी–तेल भी एक साल से ऊपर के बच्चों के भोजन में शामिल किया जा सकता है। दाल, रोटी तो जरूरी है ही। केवल दूध तथा फल पर्याप्त नहीं होगें।
- अतिसार या दस्त की बीमारी से बच्चे के भीतर का बहुत सा पानी निकल जाता है। तब उसे काफी मात्रा में तरल पदार्थ दिए जाने चाहिए : मां का दूध, दाल का पानी, मांड की लपसी, जीवन–रक्षक घोल। स्थिति गंभीर होने पर तुरंत डाक्टर के पास ले जाना भी जरूरी है और ठीक होने के बाद जल्दी स्वस्थ होने के लिए उसे पूर्व दिया जाने वाला पूरा भोजन भी।
- समय–समय पर लगने वाले टीके जरूर लगवाएं। इनकी जानकारी के लिए समीप के अस्पताल या स्वास्थ्य–केंद्र की सलाह और सहायता लें कि बच्चे गंभीर बीमारियों के शिकार न हों।
- आम तौर पर बच्चों की खांसी, जुकाम अपने आप ठीक हो जाते हैं, केवल सर्दी से बचाव का ही ध्यान रखना होगा। पर बच्चा खांसने के साथ सांस भी ठीक न ले रहा हो तो तुरंत डाक्टर के पास ले जाना जरूरी है।
- बच्चों की बहुत सी बीमारियां स्वच्छता के अभाव में होती हैं। रोग के कीटाणु कोमल बच्चों पर आक्रमण न कर सकें, इसके लिए हर बार बच्चे का काम करने या उसे खिलाने से पूर्व अपने हाथ साफ करें और बच्चे की सफाई पर अतिरिक्त ध्यान दें। विशेष रूप से शौच के बाद तथा बाहर से आने के बाद यह ध्यान रखना ज्यादा जरूरी है।
- तीन वर्ष की आयु तक बच्चे का नियमित वजन कराना और उसकी समय–समय पर जांच कराना आवश्यक हैं। बीमारी के बाद क्षति–पूर्ति के लिए विशेष भोजन के बारे में भी डाक्टर से सलाह ली जानी चाहिए।

ये कुछ सूत्र–सुझाव हैं, बाल–स्वास्थ्य की सार–संभाल के लिए, जो हर परिवार में जानकारी के लिए पहुंचाए जाने चाहिए। हर गांव–कस्बे के स्वास्थ्य–केंद्रों में पोस्टरों के रूप में लगे होने चाहिए। 21वीं सदी में हमारा पदार्पण कम से कम इन बुनियादी जानकारियों के साथ तो हो! इंटरनेट को व्यापक उपयोग में लेने की बात इसके बाद ही आती है। ❑

ग्रामीण विकास मंत्रालय में नये सचिव ने पदभार संभाला

श्री अरुण भटनागर ने ग्रामीण विकास मंत्रालय में नये सचिव का पदभार संभाल लिया है। उन्होंने डा.पी.एल.एस. संजीव रेड्डी से कार्यभार ग्रहण किया।

श्री भटनागर मध्य प्रदेश कैडर के 1966 बैच के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी हैं। इससे पहले वे कई वरिष्ठ पदों पर रह चुके हैं जिनमें प्रमुख हैं: युवा और खेल मामलों के सचिव, योजना आयोग में प्रधान सलाहकार, और भारत के राष्ट्रपति के संयुक्त सचिव।

पक्षाघात की शिकार...

पंचायत सरकार

भूषण लाल परगनिहा

लेखक के अनुसार नयी पंचायती राज व्यवस्था में पंचायत का आधार जनसंख्या को बनाया गया है। यह जनसंख्या न्यूनतम एक हजार है यानी कई बार एक हजार की जनसंख्या पूरी करने के लिए एक या दो गांवों को मिलाकर ग्राम पंचायत गठित की जाती है। इस व्यवस्था से गांव गौण हो जाता है। इससे ग्राम सभा की बैठक में उपस्थित कम रहती है क्योंकि केवल ग्राम सभा की बैठक में भाग लेने के लिए ही लोग अपने गांव से दूसरे गांव जाना पसंद नहीं करते। इसके अलावा पंचायतों के चुनाव के वर्तमान तरीके से भी गांव में सौहार्द का वातावरण बिगड़ता है। अतः पंचायती राज को सफल बनाने के लिए कुछ सुधारों की सख्त जरूरत है।

समूह या समाज व्यवस्थित ढंग से रह सकें, उनमें परस्पर सहयोग तथा सद्भाव बना रहे और सब मिलकर जीवन के लिए संघर्ष कर सकें इसके लिए कुछ नियम–कानून जरूरी होते हैं। यह मानव स्वभाव है कि जहां चार आदमी किसी सामूहिक कार्य के लिए इकट्ठे हुए, उनमें से एक को मुखिया मान लिया जाता है।

जीवन के लिए संघर्ष के कठिन दौर में जब शिकार कर के पेट भरना पड़ता था, मनुष्य को कई कठिनाइयों का, चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। इन कठिनाइयों को हल करने के लिए लोग मिल कर शिकार करने लगे। जब वे मिलकर शिकार करने लगे तो शिकार का बंटवारा होने लगा। बंटवारे के लिए कोई सिद्धांत चाहिए, कोई नियम चाहिए। बस यहीं से पंचायत रूपी संस्था का उद्‌भव होता है। हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक न्याय के लिए पंचायत ही प्रथम न्यायालय है।

निर्विवाद व्यवस्था

जहां कहीं भी गांव बसे वहीं उनकी पंचायत भी बन गई। तब से यह व्यवस्था चली आई है। ये पंचायतें स्थायी समिति के रूप में नहीं होती थीं। इनके सदस्य बदलते रहा करते थे। मुखिया अक्सर एक ही व्यक्ति हुआ करता था लेकिन पांच पंचों का चयन बैठक के समय ही हो जाता था। यह व्यवस्था निर्विवाद थी। गांव की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था, ग्रामीण स्वच्छता और स्वास्थ्य आदि की देखभाल का जिम्मा पंचायत का ही था। यद्यपि प्रत्येक गांव के पास अपनी पंचायत थी फिर भी ये गांव द्वीप नहीं थे। गांवों के बीच व्यावसायिक और सामाजिक अन्तर्संबन्ध थे। न्याय के मामले में भी जब गांव की पंचायत के सामने कोई जटिल समस्या आ जाती थी तब पड़ोस के किसी ख्यातनाम व्यक्ति को न्याय के लिए आमंत्रित किया जाता था।

कई गांवों के बीच एक साप्ताहिक हाट होती थी जहां से वे उन वस्तुओं को खरीद कर लाते थे जो उनके गांव में नहीं मिलती थीं। ये हाट केवल बाजार न होकर भेंट–मुलाकात के स्थल भी होते थे। भारतीय ग्राम्य जीवन की इस व्यवस्था ने विदेशियों को भी प्रभावित किया था। सन् 1830 में ब्रिटिश गवर्नर चार्ल्स मेटकाफ ने ग्राम सभाओं का निम्नानुसार वर्णन

किया :

'ये ग्राम समाज छोटे–छोटे प्रजातंत्र हैं, जिन्हें अपनी आवश्यकता की हर वस्तु अपने भीतर ही मिल जाती हैं और जो विदेशी सम्बन्धों से लगभग स्वतंत्र होते हैं। ये ऐसी परिस्थितियों में भी टिके रहते हैं, जिनमें दूसरी हर वस्तु का अस्तित्व मिट जाता है। ग्राम–सभाओं का यह संघ–जिनमें से प्रत्येक समाज अपने आप में एक छोटा सा स्वतंत्र राज्य होता है– उनके सुख का बहुत बड़ी हद तक साधन बनता है और उसके अन्तर्गत वे बड़ी मात्रा में स्वतंत्रता और स्वाधीनता का उपयोग करते हैं।

ग्राम–स्वराज का आधार ग्राम पंचायतें

नेहरू जी ने कहा था *'ग्राम–स्वराज की यह पद्धति आर्यों की शासन व्यवस्था की बुनियाद थी। इसी पद्धति ने उसे बल प्रदान किया। ग्राम–सभाएं अपनी स्वतंत्रताओं की इतनी जागरूकता से रक्षा करती थीं कि राज्य द्वारा यह नियम बना दिया गया था कि राजा की अनुमति के बिना कोई भी सैनिक गांव में प्रवेश न करे।'*

स्वतंत्रता आन्दोलन के मध्य जन्मी ग्राम–स्वराज की अवधारणा का आधार भी ग्राम–पंचायतें ही थीं। चूंकि प्रत्येक गांव में एक पंचायत थी अतः गांधी जी ने गांव को ही विकास की इकाई माना। ग्राम पंचायत के माध्यम से उन्होंने गांवों के सुदृढ़ीकरण का प्रयास किया। हाथ से निकलते हुए रोजगारों को पुनः प्रारंभ करने के लिए गांवों को स्वावलम्बी बनाने की दिशा में उन्होंने कदम उठाया। खादी को उन्होंने एकता, समानता और स्वावलम्बन का प्रतीक मानते हुए गांव–गांव में चरखा चलाने की प्रेरणा दी तथा जिस गांव में जो कुटीर उद्योग प्रारंभ किया जा सकता था, उसे प्रारंभ करने का अभियान चलाया।

इस प्रकार शासन ने गांव की प्रधानता को, उसके अस्तित्व को प्रमुख नहीं मानते हुए एक निर्धारित जनसंख्या को आधार माना है। यह जनसंख्या है न्यूनतम एक हजार। इस एक हजार की जनसंख्या को पूरा करने के लिए दो या दो से अधिक गांवों को मिलाकर ग्राम पंचायत का गठन किया जाता है। इस व्यवस्था में गांव गौण हो गया और ग्राम पंचायत प्रमुख।

उन्हें बेरोजगारों की चिन्ता तो थी ही, इसके साथ ही किसान को वर्ष में चार माह जो खाली समय बिताना पड़ता था उसकी भी चिन्ता थी। चरखा इसका निदान था। कई अन्य कार्य भी थे जो खाली समय में किए जा सकते थे। उनके इस अभियान में घर–घर में चरखा–तकली ने प्रवेश पाया। जहां करघा नहीं था वहां करघा लगाया गया, जहां घानी नहीं थी वहां घानी लगाई गई। कपास उत्पादन, रेशम उत्पादन, मधुमक्खी पालन, पशुपालन, हाथकुटा चावल, हाथ पिसा आटा, साबुन, कागज, स्याही बनाना इत्यादि अनेकों कार्य थे जो गांवों में प्रारंभ किए जा सकते थे। इन कार्यक्रमों को क्रियात्मक रूप देने के लिए उन्होंने ग्राम सेवक के पद की स्थापना करने की सलाह दी तथा बताया है कि ग्राम–सेवक कैसा होना चाहिए।

इस प्रकार उन्होंने समग्र ग्राम विकास की योजना तैयार की जिसमें स्वास्थ्य, पौषाहार, गांव की सफाई, शौचालय कैसा हो, मकान कैसा हो, खाद कैसे बनाएं, शिक्षा कैसी हो अर्थात् जीवन के किसी भी पक्ष को उन्होंने अनदेखा नहीं किया और इस पूरे कार्यक्रम की जिम्मेदारी उन्होंने पंचायत को दी।

उनकी पंचायत का गठन वैसे ही होता था जैसा कि परम्परा से होता आया है। गांधी जी के शब्दों में "पंचायत का अर्थ है गांव के लोगों द्वारा चुने हुए पांच आदमियों की सभा।"

पंचायतों के गठन के लिए उनका सुझाव था कि कोई भी पंचायत पहले ढिंढोरा पिटवाकर बुलाई गई सार्वजनिक सभा में चुनी जानी चाहिए। स्वतंत्र भारत में पंचायतें कैसी हों इस विषय में उनका कहना था कि *आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिये। हर एक गांव में प्रजातंत्र या पंचायती राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा रहना होगा– अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। यहां तक कि सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के सामने अपनी रक्षा करते हुए मर–मिटने के लायक बन जाए। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी।*

पंचायत के कर्तव्यों के विषय में चर्चा करते हुए गांधी जी ने कहा कि *– पंचायतघर बनाकर आपने अपने पर बड़ी जिम्मेदारी ले ली है। इस पंचायत को आप सुशोभित करें। यहां आपस में झगड़ा तो होना ही नहीं चाहिये। अगर झगड़ा हो तो पंच उसे निपटा दें। एक साल बाद में आपसे पूछूंगा कि आपके यहां से कोई कोर्ट में गया था या नहीं। अगर कोई गया तो माना जाएगा कि पंचायत ने अपना काम अच्छी तरह नहीं किया। पंच परमेश्वर का काम करते हैं। आप की कोर्ट एक होनी चाहिये – वह है आपकी पंचायत। इसमें खर्च एक कौड़ी का नहीं और काम शीघ्रता से हो जाता है। ऐसा होने पर न तो पुलिस की जरूरत होगी न मिलिटरी की।*

पंचायतों का आधार गांव के बजाय जनसंख्या

देश की स्वतंत्रता–प्राप्ति तथा पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा दिए जाने के बीच इतना लम्बा अंतराल रहा कि देश कहीं से कहीं पहुंच गया। जिन्होंने परतंत्र भारत में गांवों को देखा है वे इस बात के साक्षी हैं कि आज गांव वैसे नहीं रह गए हैं जैसे स्वतंत्रता–प्राप्ति के पूर्व थे। पंचायतों का जो स्थान ग्राम्य–जीवन में उस समय था, अब नहीं है। इस काल में गावों की स्थिति विचित्र बन चुकी है। गांव रूपी भवन पर नयी नीतियों के, नवाचार के हथौड़े की इतनी चोटें पड़ी हैं कि भवन भग्न हो गया है। अब केवल मलबे का ढेर दिखाई देता है। नये भवन की सामग्री किश्तों में पहुंचाई जा रही है। दूसरी–तीसरी किश्त पहुंचते तक पहली किश्त

की सामग्री अस्त–व्यस्त हो चुकी होती है या कार्य योग्य नहीं रह जाती है।

चुनाव की वर्तमान प्रणाली के अन्तर्गत शासन ने ग्राम पंचायतों का आकार निर्धारित कर दिया है। यह आकार जनसंख्या है। इस प्रकार शासन ने गांव की प्रधानता को, उसके अस्तित्व को प्रमुख नहीं मानते हुए एक निर्धारित जनसंख्या को आधार माना है। यह जनसंख्या है न्यूनतम एक हजार। इस एक हजार की जनसंख्या को पूरा करने के लिए दो या दो से अधिक गांवों को मिलाकर ग्राम पंचायत का गठन किया जाता है। इस व्यवस्था में गांव गौण हो गया और ग्राम पंचायत प्रमुख। यह एक असंतोषजनक व्यवस्था सिद्ध हुई है क्योंकि मिला जुला कर पंचायत बनाने में एक गांव प्रमुख होता है और शेष गांव आश्रित।

प्रत्येक गांव का एक स्वभाव होता है। हर गांव एक स्वतंत्र अस्तित्व है। जमीन, पानी, वनस्पति, जनसंख्या इत्यादि अलग–अलग होती है। जब किसी गांव को दूसरे गांव के साथ नत्थी किया जाता है तब बड़ा गांव प्रमुख हो जाता है और छोटा गांव परमुखापेक्षी। छोटे गांव के लोगों को हर बात के लिए बड़े गांव आना ही पड़ता है जब कि बड़े गांव के लोग छोटे गांव को अपना नहीं समझते हैं। छोटा गांव भले ही साप्ताहिक बाजार तथा कुछ अन्य सेवाओं के लिए बड़े गांव पर आश्रित हो परन्तु पंचायत उसकी अपनी ही होनी चाहिए। छोटे गांव को भी एक पूर्ण पंचायत का दर्जा देना चाहिये। ऐसा करने से गांव का अस्तित्व उभर कर सामने आएगा और वहां के लोग जिम्मेदारी के साथ गांव के विकास तथा व्यवस्था के संबंध में विचार करेंगे। आश्रित गांव हो जाने के कारण छोटे गांव प्रायः उपेक्षा का शिकार होते हैं तथा उस गावं के लोग बहुत रुचि लेकर कोई काम नहीं कर पाते।

जब किसी गांव को दूसरे गांव के साथ नत्थी किया जाता है तब बड़ा गांव प्रमुख हो जाता है और छोटा गांव परमुखापेक्षी। छोटे गांव के लोगों को हर बात के लिए बड़े गांव आना ही पड़ता है जब कि बड़े गांव के लोग छोटे गांव को अपना नहीं समझते हैं।... छोटे गांव को भी एक पूर्ण पंचायत का दर्जा देना चाहिए। ऐसा करने से गांव का अस्तित्व उभर कर सामने आएगा और वहां के लोग जिम्मेदारी के साथ गांव के विकास तथा व्यवस्था के संबंध में विचार करेंगे।

ग्राम सभा

ग्राम सभा की परिभाषा यह है कि गांव का जो भी व्यक्ति पंचायत चुनाव में वोट देने की पात्रता रखता है वह ग्राम सभा का सदस्य माना जाएगा। यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि ग्राम सभा किन्हीं चुने हुए लोगों की सभा न होकर एक सहज सा संगठन है। शासन की ओर से ग्राम सभा की बैठक वर्ष में चार बार निर्धारित है। निर्धारित तिथियों के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार ग्राम सभा की बैठक आयोजित की जा सकती है। ग्राम सभा की अध्यक्षता सरपंच करेंगे। सरपंच की अनुपस्थिति में उप–सरपंच करेंगे और दोनों की अनुपस्थिति में कोई भी अन्य व्यक्ति जिसे उपस्थित सदस्य नामित कर दें, ग्राम सभा की अध्यक्षता कर सकता है।

चुनाव लड़कर, सरपंच, उप–सरपंचों तथा पंचों से, जिनकी संख्या 10 से 20 होती है, ग्राम पंचायत का गठन होता है। ग्राम पंचायत पर अंकुश रखने अथवा मार्गदर्शन की दृष्टि से ग्राम सभा का ग्राम पंचायत पर वर्चस्व माना गया है।

जब किसी ग्राम पंचायत में एक से अधिक गांव होते हैं तब ग्राम सभा की बैठक के विषय में भी दुविधापूर्ण स्थिति पैदा होती है। एक गांव का व्यक्ति ग्राम सभा की बैठक में भाग लेने दूसरे गांव में भला क्यों जाएगा जब तक कि उसे कोई व्यक्तिगत काम न हो? यदि पंचों के अतिरिक्त एक–दो लोग चले भी गए तो महिलाएं नहीं जायेंगी।

कोरम

ग्राम सभा की बैठक में कुल सदस्यों का 10 प्रतिशत उपस्थिति होने पर कोरम (गणपूर्ति) माना जाएगा। ग्राम सभा में भी एक तिहाई महिलाओं की उपस्थिति अनिवार्य होनी चाहिए किन्तु इस विषय में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है।

क्या ग्राम–सभा की बैठकों में गणपूर्ति होती है? औसतन एक ग्राम सभा में 500 से 1,000 तक सदस्य होते हैं। इस हिसाब से किसी भी बैठक में 50 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है। इसमें उपस्थित महिलाओं की संख्या कम से कम 17 होनी चाहिए।

शिकायत यह है कि ग्राम सभा की बैठकों में लोग आते नहीं हैं। ग्राम सभा की बैठक सम्बन्धी सूचना महत्वपूर्ण स्थल पर चिपकाकर की जाती है तथा मुनादी की जाती है फिर भी बैठक में गणपूर्ति नहीं हो पाती और प्रावधान के अनुसार बैठक स्थगित कर एक घंटा बाद पुनः आयोजित की जाती है। जो भी सदस्य उपस्थित होते हैं वे सभा में अनुमोदनार्थ रखे गए सभी प्रस्ताव अनुमोदित कर देते हैं।

ग्राम सभा एक सहज संस्था

यहां पर कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं। ग्राम सभा कोई गठित संस्था नहीं है और चूंकि यह किसी विधि–विधान द्वारा गठित नहीं की जाती है अतः इसके विषय में नियम कानून बनाना शासन के अधिकार क्षेत्र के बाहर है। शासन की नजर में ग्राम सभा का स्थान ग्राम पंचायत से ऊपर है क्योंकि उसे ये अधिकार दिए गए हैं कि वह निम्नांकित विषयों पर चर्चा करे :

- ग्राम पंचायत की पिछले वित्तीय वर्ष की प्रशासनिक रिपोर्ट
- ग्राम पंचायत के आय–व्यय का सालाना पत्रक
- ग्राम पंचायत के अगले वित्तीय वर्ष के लिए प्रस्तावित कार्यक्रम

● ग्राम पंचायत की पिछली आडिट टिप्पणी और उसमें भेजे गए उत्तर

ऐसी स्थिति में ग्राम सभा की अध्यक्षता किसे करनी चाहिये? यदि ग्राम सभा ग्राम पंचायत के ऊपर है और उसे पंचायत के किसी खर्च के विषय में टोका–टोकी करने का अधिकार है, किसी प्रस्ताव में संशोधन का अधिकार है तो जाहिर है कि ग्राम सभा का अध्यक्ष सरपंच से वरिष्ठ कोई व्यक्ति ही होगा। सरपंच तो इस सभा की अध्यक्षता कर ही नहीं सकता। इसी प्रकार इस सभा के अन्य सदस्य भी पंचों से ऊपर ही माने जायेंगे।

मगर पंचायती राज हेतु बनाए गए नियम कानूनों में ऐसा कहीं दर्शाया नहीं गया है। तो क्या यह माना जाए कि ग्राम सभा एक काल्पनिक सभा है जिसे ग्राम पंचायत की सुविधा के लिए कल्पित किया गया है ताकि ऐसा प्रतीत हो कि ग्राम पंचायत के ऊपर अंकुश रखने वाली एक अन्य संस्था का गठन भी गांव में किया गया है।

क्या यह हास्यास्पद नहीं लगता कि सरपंच ही ग्राम पंचायत के प्रस्तावों तथा खर्चों का अनुमोदन करे? क्या यह गुड्डा–गुड्डी का खेल है? क्या इस स्थिति से ऐसा सोचने का मन नहीं करता कि ग्राम–वासियों की अनभिज्ञता तथा उदासीनता का नाजायज लाभ लेने के लिए ही इस काल्पनिक सभा का अस्तित्व माना जा रहा है। जिसे ग्राम सभा का नाम दिया जा रहा है वह काल्पनिक नहीं है। वह तो एक सहज वर्ग है जो आयु द्वारा पारिभाषित है। इसमें गठन की क्या बात है। गांव में जो भी व्यक्ति 18 वर्ष की आयु पार कर चुका होता है वह ग्राम सभा का सदस्य होता है। गठन तो तब माना जाएगा जब किसी निर्धारित कर्त्तव्यों के वहन के लिए, किसी निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ निर्धारित प्रक्रिया द्वारा पात्र घोषित व्यक्तियों की चुनाव अथवा मनोनयन द्वारा कोई संस्था/समिति/दल बनाया जाए।

पंचायती राज में ग्राम स्तर पर ग्राम–सभा की कल्पना की गई है तथा उसे क्रियात्मक रूप प्रदान करने का प्रयास किया गया है परन्तु दोनों के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं है। सरपंच ही जब दोनों संस्थाओं की अध्यक्षता करेगा तो प्रकट है कि सही–गलत के समर्थन में कोई कठिनाई नहीं आएगी। यही हो रहा है।

यहां पर ग्राम पंचायत के गठन की विधि और उसके स्वरूप पर दो शब्द कहना मुनासिब होगा। यदि एक ही गांव ग्राम पंचायत बनाने के लिए पर्याप्त है तो उसे वार्डों में बांट दिया जाता है। वार्डों में विभाजन के समय केवल अनुसूचित जाति वार्ड ही लगभग शुद्ध रूप में एक जातीय वार्ड बन पाता है क्योंकि पारम्परिक रूप से ये एक अलग मुहल्ले/पारा में बसते आए हैं। परन्तु यदि इनकी संख्या कम हो तो दूसरी जाति अर्थात् गैर–अनुसूचित जाति के लोग भी इस वार्ड में सम्मिलित कर दिए जाते हैं। गांव वार्डों में तो बंटा नहीं होता अतः एक पारा का एक भाग एक वार्ड में तो दूसरा भाग दूसरे वार्ड में आ जाता है। इस प्रकार सहज रूप से जो एक पारा होता है, जो अक्सर जाति बहुल होता है, उसे दो भागों में विभाजित कर दिया जाता है।

इस प्रकार 10 या अधिक वार्ड़ों में लोगों को बांटने के बाद प्रत्याशी खड़ा करने हेतु कहा जाता है। यदि पंचायत चुनाव को पूर्णतः गांव वालों पर छोड़ दिया जाए तो चुनाव लड़ने के अवसर बहुत कम ही आएंगे। मगर ऐसा नहीं होता है। राजनीतिक दलों के अभिकर्त्ता लोगों को चुनाव लड़ने के लिए उकसाते हैं अर्थात् प्रत्याशियों को राजनीतिक दलों से जोड़ दिया जाता है।

चुनाव–पद्धति में बदलाव की आवश्यकता

आम आदमी किसी दल का नहीं होता है। उसे किसी राजनीतिक दल से क्या लेना देना? वह या तो छुट्टा मजदूर होता है या अनुबंधित मजदूर होता है, कारीगर होता है, लघु कृषक होता है, मध्यम या बड़ा किसान होता है जिसे अपने काम से मतलब होता है। जिन्दगी के इस पक्ष में चुनाव आदि का कोई मतलब नहीं होता है। चूंकि ग्राम पंचायत के गठन की प्रक्रिया ऐसी है कि फार्म भरकर चुनाव लड़ना आवश्यक है अतः पुरुष और महिला दोनों को जबरदस्ती फार्म भरवाया जाता है। चूंकि एक सीट के लिए दो–दो, तीन–तीन प्रत्याशी होते हैं और उन्हें चुनाव जीतने के लिए उकसाया जाता है अतः न केवल प्रतिद्वन्दी बल्कि उनके समर्थक भी प्रतिद्वन्दी के समर्थक के दुश्मन बन जाते हैं।

ग्राम–पंचायत स्तर पर चुनाव के लिए आम–चुनाव की पद्धति अपनाना ठीक नहीं है। ग्राम–पंचायत एक बहुत ही अलग प्रकार की संस्था है जो एक ही गांव के लिए होती है या फिर पड़ोस के कुछ गांव मिलकर एक ग्राम पंचायत का गठन करते हैं। अतः ग्राम पंचायत के प्रत्याशियों तथा वोटरों के बीच निकटता और सहोदरता का भाव रहता है जिसे नष्ट करना एक सामाजिक अपराध की श्रेणी में आता है। ग्राम–पंचायत का चुनाव इस ढंग से होना चाहिए कि चुनाव के बाद भी गांव का वातावरण ज्यों का त्यों रहे।

पंचायती राज की बुनियाद अभी भी कमजोर है। कमजोर बुनियाद पर खड़ा भवन भरोसेमंद नहीं माना जाता है। ग्राम पंचायत चुनाव के बाद पंच सरपंचों के बीच तना–तनी बनी रहती है जिसका आधार गांव के भविष्य पर पड़ता है। बैठकों में कोरम पूरा नहीं होता है। अधिकांश बैठकों में सरपंच के समर्थक पंच ही उपस्थित होते हैं और गणपूर्ति नहीं होने पर भी संवैधानिक प्रावधान का लाभ लेते हुए प्रस्ताव पास कर लेते हैं। विरोधी पंच जब बैठक में उपस्थित रहते हैं तब चांव–चांव करके अच्छे प्रस्तावों का भी विरोध करते हैं और बैठक को अनिर्णय की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं।

'यूनीसेफ' का अध्ययन

यूनीसेफ द्वारा नवगठित ग्राम पंचायतों का अध्ययन करवाया गया। इस अध्ययन के उपरान्त इस संगठन द्वारा एक प्रशिक्षण मैनुअल तैयार किया गया है जिसमें कुछ आवश्यक कमजोरियों पर प्रकाश डाला गया है। ग्राम पंचायत में महिलाओं की भागीदारी एक तिहाई सुनिश्चित की गई है। एक तिहाई सीटों की भरने के लिए चाहे जिसे चाहे प्रत्याशी बना दिया जाता है। जिन पंचायतों में सरपंच का पद महिला घोषित हो गया वहां पहली प्राथमिकता तो सरपंच की पत्नी अथवा किसी अन्य रिश्तेदार को दी जाती है। इसका कोई विशेष विरोध नहीं होता क्योंकि इस महिला को एक अनुभवी सरपंच पति के मार्गदर्शन की गारंटी होती है। शेष स्थानों पर भी जिन महिलाओं को खड़ा किया गया उन्हें अपने पति के मार्गदर्शन का सहारा था। इस प्रकार सरपंच पति प्रथा चली जिसका भंडाफोड़

यूनीसेफ ने किया तथा प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में इसे प्रमुख समस्या मानते हुए ग्राम पंचायत के सदस्यों से निवेदन किया गया कि वे सरपंच पति को बैठक में उपस्थित होने से रोकें।

परदा प्रथा भी पंचायती राज को कमजोर बनाने का एक प्रमुख कारण है। यूनीसेफ का प्रशिक्षण बहुत सीमित दायरे में हुआ। प्रारंभ में एक जिले में एक विकास खण्ड में यह प्रशिक्षण दिया गया परन्तु यह केवल सरपंचों और सचिवों के लिए था इसलिए न तो इसका कोई विशेष प्रभाव परिलक्षित हुआ न ही व्यापक।

ऐसी महिलाओं की संख्या बहुत कम है जो स्वेच्छा से चुनाव लड़कर आई हैं। चुनी गई महिलाओं में अनपढ़ों की संख्या कम नहीं है। साक्षरता अभियान ने कदाचित हस्ताक्षर करना ही सिखाया है। यह स्थिति सभी वर्गों की महिलाओं के साथ है। आरक्षित सीटों से चुनकर आने वाली महिलाएं तो बैठकों से अक्सर परहेज करती हैं या फिर जिस समय बैठक हो रही हो उसी समय वे किसी कृषि/मजदूरी कार्य में व्यस्त रहती हैं। जाहिर है कि रोजी–रोटी अधिक महत्वपूर्ण है।

सुझाव

महिलाओं के लिए यदि चुनाव लड़ने की आयु–सीमा कम कर दी जाए तो उच्च माध्यमिक शाला में अध्ययनरत बालिकाएं चुनाव लड़ लेंगी और अनपढ़ गृहस्थ महिलाओं की तुलना में अधिक और अच्छा काम कर सकेंगी। उनमें योग्यता भी होगी और उत्साह भी।

चुनाव में पोलिंग पद्धति के स्थान पर लाटरी पद्धति कर देने से चुनाव पद्धति की सारी बुराईयां तथा शासन का अनावश्यक खर्च और शासकीय कर्मियों की परेशानी से बचा जा सकेगा। देखना केवल यह होगा कि प्रत्याशी उपयुक्त हो और यह देखना ग्रामवासियों का काम है।

पंचायती राज का जो खाका गांधी जी ने खींचा है उसे ही साकार करने की मंशा शासन द्वारा प्रकट की गई है। परन्तु यह कदम बहुत विलम्ब से उठाया गया।

पंचायती राज को सफल बनाने के लिए कुछ कठोर कदम उठाया जाना अपरिहार्य प्रतीत होता है। कुछ सुझाव निम्नांकित है:

- गांव को गांव ही रहने दिया जाए अर्थात् कृषि क्षेत्र घोषित कर किसी भी अन्य उद्योग की स्थापना पर पाबंदी लगाई जाए। केवल कृषि आधारित उद्योग लगाए जाएं वे भी निर्धारित स्थानों पर।
- चुनाव के लिए न्यूनतम अर्हता निर्धारित की जाए।
- चुनाव की पद्धति बदल दी जाए।
- पंचायत (अर्थात ग्राम–सभा) को ग्रामीण न्यायालय का स्वरूप प्रदान किया जाए। पंचायत द्वारा लिए गए निर्णय में पुलिस का हस्तक्षेप न हो।
- शासकीय कर्मियों का मुख्यालय में रहना आवश्यक हो।
- सतत् शिक्षा के अन्तर्गत जिला साक्षरता समितियां तथा नेहरू युवक केन्द्रों द्वारा पंचायती राज सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाए।

गांधी जी के मतानुसार *"आजादी का अर्थ हिन्दुस्तान के आम लोगों की आजादी होना चाहिए, उन पर आज हुकूमत करने वालों की आजादी नहीं। हाकिम आज जिन्हें अपने पांव तले रौंद रहे हैं, आजाद हिन्दुस्तान में उन्हीं लोगों की मेहरबानी पर हाकिमों को रहना होगा। उनको लोगों के सेवक बनना होगा और उनकी मर्जी के मुताबिक काम करना होगा।"* ❑

अप्रैल माह में विशेषांक

पत्रिका का अगले माह का यानी अप्रैल 2000 का अंक एक विशेषांक के रूप में निकाला जा रहा है जिसका विषय है : **ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या और उससे निपटने के उपाय।** अंक में क्षेत्र के विशेषज्ञ और अन्य जाने–माने विद्वान इस विषय का गहराई से विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। रंग–बिरंगे चित्रों से सुसज्जित 64–72 पृष्ठों के इस अंक का मूल्य होगा मात्र 15 रुपये।

आप अपने समाचार पत्र विक्रेता से अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लीजिए अथवा निम्न पते पर सम्पर्क कीजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7,
आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110066

भारत 2000 INDIA 2000

Authoritative Reference Annual
of Government of India
has hit the stands

Price: Rs.200/-

A must for students appearing for competitive examinations, academicians, journalists, scholars and school/college libraries and other institutions.

Buy INDIA 2000 with MASS MEDIA 2000 and save Rs.100/-

Book Your Copy
With The Local Agent Or Contact:

Sales Emporia of Publications Division : Patiala House, Tilak Marg, **New Delhi**, Ph. 011-3387983;Super Bazar, Connaught Circus, **New Delhi**, Ph. 011-3313308;Hall No.196, Old Secretariat, **Delhi**, Ph. 011-3968906;Rajaji Bhavan, Besant Nagar, **Chennai**, Ph. 044-4917673; 8, Esplanade East, **Calcutta**, Ph 033-2488030; Bihar State Cooperative Building, Ashoka Rajpath, **Patna**, Ph. 0612-653823, Press Road, **Thiruvananthapuram**, Ph. 0471-330650; 27/6, Ram Mohan Rai Marg, **Lucknow**, Ph. 0522-208004; Commerce House, Currimbhoy Road, Ballard Pier, **Mumbai**, Ph. 022-2610081; State Archaeological Museum Building, Public Gardens, **Hyderabad**, Ph. 040-236393;1st Floor, F-Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, **Bangalore**, Ph. 080-5537244;C.G.O. Bhavan, 'A' Wing, A.B. Road, **Indore**;80, Malviya Nagar, **Bhopal**; B-7/B, Bhawani Singh Road, **Jaipur**.

PUBLICATIONS DIVISION
MINISTRY OF INFORMATION & BROADCASTING
GOVERNMENT OF INDIA

गांवों में आवासीय समस्या का समाधान संभव

अमरेश कुमार तिवारी

रोटी, कपड़ा की तरह आवास भी एक बुनियादी जरूरत है और देश में ऐसे लोगों का प्रतिशत बहुत ज्यादा है जिनके पास आवास नहीं है। 1991 की जनगणना के अनुसार देश के लगभग डेढ़ करोड़ ग्रामीण परिवारों के पास अपने आवास नहीं थे। अब यह संख्या ढाई करोड़ तक हो सकती है। इन्दिरा आवास योजना ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और मुक्त बंधुआ मजदूरों को मुफ्त आवास उपलब्ध कराने के लिए 1985 में शुरू की गई थी। अब तक करीब 57 लाख मकान इस योजना के तहत बनाए जा चुके हैं और इस पर 9,070 करोड़ रुपये खर्च किए जा चुके हैं।

विकास का लाभ समाज के हर वर्ग तक पहुंचना चाहिए अर्थात् हमारी सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों का सही और वास्तविक लाभ देश के सभी नागरिकों, समाज के हर तबके के लोगों को समान रूप से मिलना चाहिए। लोगों को पिछड़ेपन से मुक्त करने, दलित–पिछड़ों, अल्पसंख्यकों तथा कमजोर वर्ग के लोगों को शासन में भागीदारी प्रदान कर शोषण मुक्त व समतामूलक समाज की स्थापना ही हमारा मुख्य उद्देश्य है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ग्रामीण निर्धनों की आवास संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रयास के रूप में जवाहर रोजगार योजना की उप–योजना के रूप में मई 1985 में इंदिरा आवास योजना शुरू की गई। पहली जनवरी 1996 से इसे स्वतंत्र योजना के रूप में चलाया जा रहा है।

योजना के लाभार्थी

इंदिरा आवास योजना का मूल उद्देश्य अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लोगों, बंधुआ मजदूरी से मुक्त कराए गए श्रमिकों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले गैर–अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोगो को आवासीय इकाईयों के निर्माण तथा न रहने योग्य कच्चे मकानों की मरम्मत के लिए अनुदान सहायता उपलब्ध कराना है। इस योजना का फायदा अब विधवाओं और युद्ध में मारे गए रक्षाकर्मियों के परिवारों को भी उपलब्ध कराया जाने लगा है। इसके साथ–साथ पूर्व सैनिक और अर्ध सैनिकों बलों के सेवानिवृत्त कर्मियों

को भी इस योजना का फायदा दिया जा रहा है बशर्ते कि वे इस योजना की पात्रता की सामान्य शर्तें पूरी करते हों।

केन्द्र और राज्य सरकारों का सहयोग

आज लगभग पूरे देश में कुल 56,53,876 यानी कि लगभग 57 लाख आवासों का निर्माण इंदिरा आवास योजना के तहत हो चुका है। 1985–86 से 1998–99 तक इस कार्य के लिए कुल 9,070.98 करोड़ रुपये की राशि खर्च की गई है। 1999–2000 में केन्द्रीय आबंटन 15 अरब रुपये हैं और लगभग 12.72 लाख मकान बनाने का लक्ष्य है। जबकि 1999–2000 से रहने के अयोग्य कच्चे मकानों की मरम्मत के लिए प्रति मकान 10 हजार रुपये की सहायता देने की योजना भी चलायी जा रही है। इस योजना के अंतर्गत उस समूह को लक्ष्य बनाया गया है जिसकी वार्षिक आमदनी 32,000 रुपये तक है। लेकिन प्राथमिकता ऐसे परिवारों को दी जाती है जो गरीबी रेखा से नीचे हों तथा उनको मिलने वाला लाभ उस वित्तीय वर्ष के लिए इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत कुल आबंटन के 40 प्रतिशत से ज्यादा हो। योजना का खर्च केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें 75:25 के अनुपात में उठाती हैं।

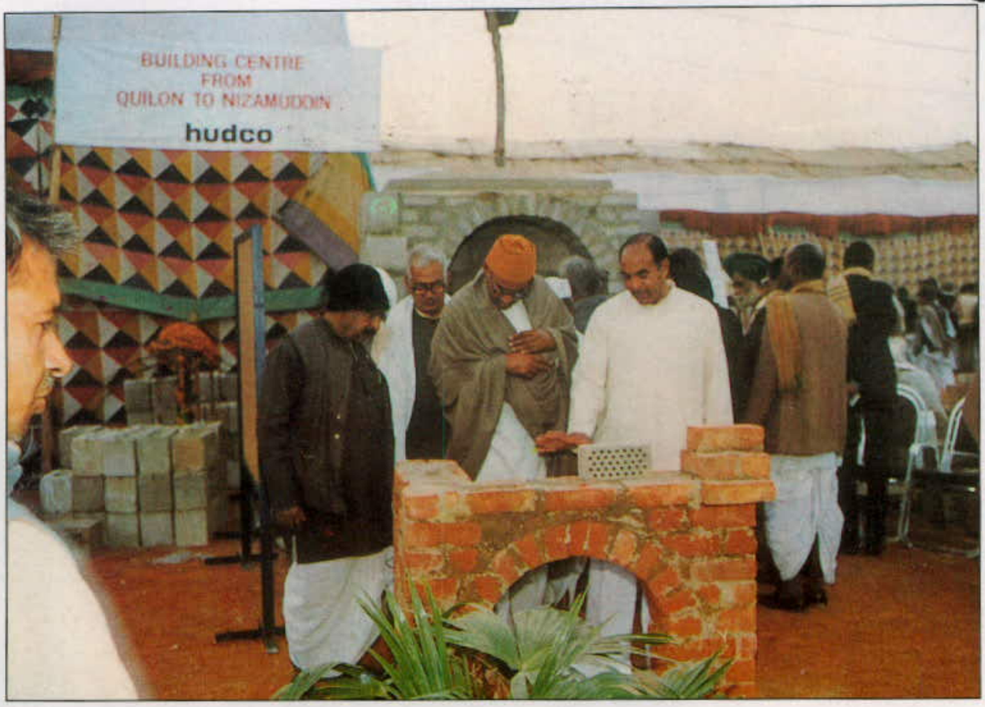

ग्रामीण क्षेत्रों में कम लागत पर आवास निर्माण के लिए नमूने विकसित किए जा रहे हैं

इंदिरा आवास योजना के तहत मकान सामान्यतया गांव की मुख्य बस्ती में निजी भूखण्डों पर बनाया जाता है। इन मकानों को छोटी बस्ती के रूप में या समूहों में भी बनाया जा सकता है जिससे कि अन्दरूनी सड़कों, नालियों, पेयजल की आपूर्ति आदि जैसी सुविधाओं के लिए विकासात्मक ढांचे की सुविधा प्रदान की जा सकें। इस बात पर भी सदैव ध्यान दिया जाता है कि इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत मकान गांव के नजदीक हों न कि दूर, जिससे कि सुरक्षा और संरक्षा, कार्यस्थल में नजदीकी तथा सामाजिक संपर्क सुनिश्चित किया जा सके। इस समय इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत निर्माण सहायता की अधिकतम सीमा इस प्रकार से है –

	मैदानी क्षेत्र	पहाड़ी या दुर्गम क्षेत्र
स्वच्छ शौचालय व धुंआ रहित चूल्हा सहित मकान का निर्माण	17,500 रुपये	19,500 रुपये
ढांचागत और सामान्य सुविधाएं प्रदान करने की लागत	2,500 रुपये	2,500 रुपये
कुल	20,000 रुपये	22,000 रुपये

ग्राम पंचायतों की भूमिका

मकानों का निर्माण लाभार्थियों द्वारा स्वयं किया जाता है। लाभार्थी निर्माण के लिए अपनी व्यवस्था स्वयं कर सकते हैं। अपने आप ही कुशल श्रमिकों को लगा सकते है तथा पारिवारिक श्रम का भी योगदान कर सकते हैं। लाभार्थियों को मकान के निर्माण के संबंध में पूरी स्वतंत्रता होगी क्योंकि यह उसका अपना है। इससे लागत कम आएगी, निर्माण की गुणवत्ता बेहतर होगी, लाभार्थियों को संतोष होगा और वे मकान को आसानी से स्वीकार कर लेंगे। इस प्रकार मकान के उचित निर्माण का दायित्व स्वयं लाभार्थियों पर ही होगा। वैसे इन लाभार्थियों का चयन, जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों/जिला परिषदों द्वारा किए गए आबंटनों तथा निर्धारित लक्ष्यों के आधार पर एक विशिष्ट वित्तीय वर्ष के दौरान इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत बनाए जाने वाले मकानों की पंचायतवार संख्या के निर्धारण के आधार पर किया जाता है जिसकी सूचना ग्राम पंचायत को दी जाती है।

बिहार और उत्तर प्रदेश का उदाहरण

ग्रामीण विकास मंत्रालय के अनुसार, इस समय ऐसी योजना के तहत सबसे ज्यादा 54,636 मकान, बिहार राज्य में निर्मित हैं। राज्य में योजना के तहत वर्ष 1991–92 में 22,540 आवास इकाइयों का निर्माण किया गया। 1992–93 में निर्मित इकाई बढ़कर 28,189 हो गई तथा वर्ष 1993–94 में यह और अधिक बढ़कर 36,589 हो गई है। इस कार्यक्रम के अर्न्तगत गांवों में निवास करने वाले गरीबों विशेषकर मेहतर, डोम, मुसहर आदि जातियों के लिए बड़े पैमाने पर आवासीय मकानों का निर्माण जारी है फिर भी बढ़ती आबादी के समक्ष, संख्या बहुत कम पड़ रही है।

उत्तर प्रदेश राज्य में इंदिरा आवास योजना का क्रियान्वयन प्रदेश में वर्ष 1985–86 से किया जा रहा है। आरंभ में यह ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी योजना की उप–योजना के रूप में क्रियान्वित की गई परन्तु वर्ष 1989 में जवाहर रोजगार योजना के आरंभ होने के पश्चात् इसे जवाहर रोजगार योजना की उप–योजना के रूप में क्रियान्वित किया जाता रहा। परन्तु वर्ष 1996–97 से भारत सरकार ने इसे स्वतंत्र योजना का रूप दिया और तब से राज्य में इंदिरा आवास योजना का प्राथमिक उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़े तथा कमजोर वर्गों के लोगों को निःशुल्क मकान मुहैया

कराना, जारी है। राज्य में कुल 25,300 आवास बन चुके हैं जो कि मुख्यतः राज्य के कुछ जिलों जैसे बुलंदशहर, अलीगढ़, गाजियाबाद, कानपुर, सहारनपुर, मुरादाबाद के गांवों में हैं यानी इन जिलों के गांवों में, योजना के तहत, आवास निर्माण कार्य जोरों से चल रहा है। भारत सरकार द्वारा, राज्य में आवासों की लागत में निम्नानुसार वृद्धि की गयी है।

	मैदानी क्षेत्र	पहाड़ी या दुर्गम क्षेत्र
मकानों का निर्माण स्वच्छ शौचालय एवं धुंआ रहित चूल्हों सहित	17,500 रुपये	19,500 रुपये
बुनियादी और सामान्य सुविधाएं मुहैया कराने की लागत	2,500 रुपये	2,500 रुपये
कुल	20,000 रुपये	22,000 रुपये

राज्य में लाभार्थियों को भुगतान दो किश्तों में क्रास चेक के माध्यम से किया जाता है। द्वितीय किश्त के भुगतान से पूर्व प्रथम किश्त का उपभोग सुनिश्चित कर लिया जाता है। भुगतान जनप्रतिनिधियों जैसे पंचायत प्रधान, सरपंच आदि के सामने ब्लाक स्तर पर कैम्प मेला लगाकर किया जा रहा है जिसका पूर्व से प्रचार–प्रसार भी किया जाता है तथा संबंधित अभिलेख भी रखे जाते हैं। कुल मिलाकर राज्य में यह योजना सुचारु रूप से चल रही है। परन्तु उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों के गांवों में इस योजना के बावजूद भी कमजोर वर्गों के लोगों के लिए आवासीय समस्या बनी हुई है। इसका एक मात्र कारण हैं सुविधाओं का गलत इस्तेमाल किए जाना। देश की राजधानी के समीपवर्ती जिलों जैसे गाजियाबाद जिला के लोनी प्रखंड के जमाली गांव में भूमि कटाव के कारण इंदिरा आवास योजना के तहत बनने वाले मकानों के निर्माण में रुकावटें आ रही हैं। यहां के ग्राम प्रवासी राजकुमार और सुखवीर सिंह के अनुसार, गांवों में लगभग 100 से भी ज्यादा ईंटों की भट्टे हैं जिनके कारण भूमि का कटाव इतना हो चुका है कि गड्ढा करीब 40 फुट तक गहरा हो गया है, जिससे जमीन से पानी भी निकल आता है। इसके लिए एक मात्र दोषी हैं, बड़े–बड़े ठेकेदार, जो ग्रामीणों को गांव में ईंटों की भट्ठे लगवाते हैं और बदले में प्रदूषण तथा बंजर भूमि दे जाते हैं।

मकानों का निर्माण लाभार्थियों द्वारा स्वयं किया जाता है। लाभार्थी निर्माण के लिए अपनी व्यवस्था स्वयं कर सकते हैं। अपने आप ही कुशल श्रमिकों को लगा सकते है तथा पारिवारिक श्रम का भी योगदान कर सकते हैं। लाभार्थियों को मकान के निर्माण के संबंध में पूरी स्वतंत्रता होगी क्योंकि यह उसका अपना है। इससे लागत कम आएगी, निर्माण की गुणवत्ता बेहतर होगी, लाभार्थियों को संतोष होगा और वे मकान को आसानी से स्वीकार कर लेंगे।

हिमाचल में गांधी कुटीर योजना

हिमाचल प्रदेश सरकार ने ग्रामीण आवास हेतु गांधी कुटीर योजना शुरू की हैं। वर्ष 1998–99 के दौरान 31 दिसम्बर 1999 तक गांधी कुटीर योजना के अंतर्गत 30.53 करोड़ रुपये की ऋण राशि से हिमाचल प्रदेश आवास मंडल ने राज्य के विभिन्न जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में बेघर गरीबों को वित्तीय सहायता प्रदान करने की 12 नगद ऋण योजनाएं स्वीकृत की हैं। राज्य में इंदिरा आवास योजना के तहत केवल 467 आवास ही निर्मित हुए हैं। हालांकि गांधी कुटीर योजना की कार्यशैली, इंदिरा आवास योजना से कुछ भिन्न हैं परन्तु दोनों का लक्ष्य एक ही है, राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़े और कमजोर वर्गों के लोगों की आवासीय समस्या का समाधान।

महाराष्ट्र में निष्पादन

महाराष्ट्र राज्य के कोल्हापुर जिले के गांवों में 'इंदिरा आवास योजना' कार्यक्रम बहुत सफल रही है। हालांकि राज्य का यह जिला कृषि, सिंचाई, शिक्षा, तथा उद्योग धंधे में पीछे नहीं है परन्तु, अभी हाल में यदि सरकारी सुविधा का कहीं सही उपयोग हुआ है तो यहां के गांवों में कार्यक्रम के तहत निर्धनों के लिए निःशुल्क मकान बनवाकर। एक प्राप्त सर्वेक्षण के अनुसार, 1997–98 के अंत तक यहां गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों के लिए 9,111 मकानों का निर्माण किया गया है। कोल्हापुर से 22 किलोमीटर दूर बोस्पादाले गांव, जो ऐतिहासिक पनहाला किला तथा वारना नदी घाटी के समीप स्थित है, में इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत, मकानों का निर्माण जोर–शोर से किया जा रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार इस गांव की कुल जनसंख्या 2,501 है जो कि मूलतः कृषि पर आश्रित है। यहां कुल 767 परिवारों में 301 लोग गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं तथा 63 लोग अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के हैं जिनके आवास निर्माण का कार्य जारी है। राज्य के वर्धा जिला में, सेन्टर आफ सोसायटी फार विलेज (सी.एस.वी.) राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचारानुकूल पिछड़े तबके के लिए आवास निर्माण हेतु दृढ़ संकल्प है। वर्धा के विभिन्न गांवों में इंदिरा गांधी आवास योजना के अंतर्गत वर्धा हाउस माडल तैयार किए जाते हैं। कुल मिलाकर राज्य में इंदिरा आवास योजना के तहत 14,208 आवास बनवाए जा चुके हैं।

निष्कर्ष

ग्रामीण विकास कार्यक्रम गरीबी दूर करने, आय विषमताओं को कम करने तथा सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को समाप्त करने और साथ में बुनियादी सुविधाएं तथा आवास की व्यवस्था करके समाज के गरीब और अन्य वर्गों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के प्रति राष्ट्र प्रतिबद्धता पर जोर देते हैं। अतः ऐसे कार्यक्रम ही 'इंदिरा आवास योजना' द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में आवास के कमी की समस्या को दूर कर सकते हैं। यहां तक कि मानव बसावटों के लिए अंतर्राष्ट्रीय सुविधा भी मिल सकती है। कुल मिलाकर इंदिरा आवास योजना के तहत पूरा लक्ष्य प्राप्त करने की संभावना है जिससे गांवों में बेघरों को अपने घर में रहने का सौभाग्य प्राप्त हो सके और वे भी देश की मुख्य धारा से जुड़कर स्वतंत्र देश का नागरिक होने का गौरव अनुभव कर सकें। ❑

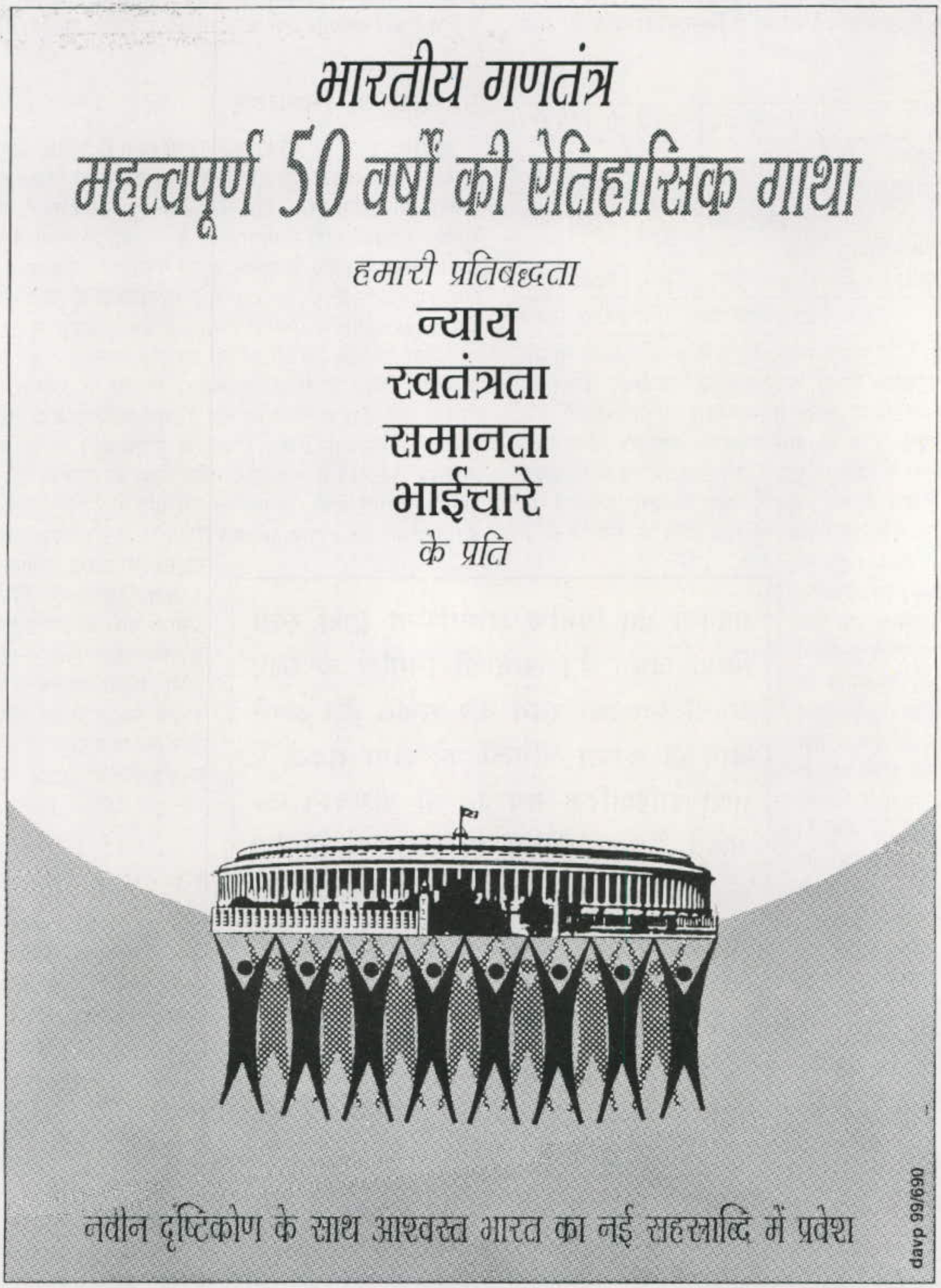
भारतीय गणतंत्र
महत्वपूर्ण 50 वर्षों की ऐतिहासिक गाथा
हमारी प्रतिबद्धता
न्याय
स्वतंत्रता
समानता
भाईचारे
के प्रति
नवीन दृष्टिकोण के साथ आश्वस्त भारत का नई सहस्राब्दि में प्रवेश
davp 99/690

नदिया बहती रहो!

डा. शीतांशु भारद्वाज

चौपाल में पंचायत की आवश्यक बैठक बुलाई गई थी। उसमें सभी वर्गों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। सभापति ने उनसे आग्रह किया कि वे एक–एक कर सारी समस्याएं पंचायत के सामने प्रस्तुत करें। फिर तो समस्याओं की झड़ी ही लगने लगी। सभापति गंभीर हुए। उन्होंने सदस्यों को संबोधित किया, मित्रो! इस समय सबसे बड़ी समस्या बिजली–पानी की है। हमें सर्वप्रथम इसी पर विचार करना चाहिए।

"वही तो।" किसी एक सदस्य ने कहा, "आप इस पर संबंधित विभाग से लिखा–पढ़ी कीजिए।"

"क्यों भई!" एक बुजुर्ग सदस्य ने प्रश्न उछाला, "पहले जब हमारे गांव में बिजली–पानी की सुविधाएं नहीं थीं तो क्या हम लोग गुजर–बसर नहीं करते थे?"

"यहां मैं आपसे सहमत नहीं हूं, दादा!" सभापति बोले, "तब की बात ही कुछ और थी। आज जबकि सरकार की ओर से हमें ये सारी सुविधायें मुहैया करवाई गई हैं तो क्यों न हम उनका उपयोग करें।"

"ठीक है! आप कार्यवाही करते रहें।" वही बुजुर्ग बोले।

दोपहर बाद चौपाल में 'महिला मंगल दल' की बैठक होने लगी। वहां भी प्रश्नों की बौछार होने लगीं। दल की मुखिया ने कहा, बिजली–पानी की समस्या पर तो मर्द लोग पंचायत में विचार कर चुके हैं। हमें तो यह सोचना है कि क्षेत्र की दारूबंदी कैसे की जाए? इस दारू ने सारे मर्दों को बर्बाद कर दिया है।

"इसके लिए किशनुवा का घेराव किया जाए।" एक महिला ने प्रस्ताव रखा।

"यही ठीक रहेगा।" किसी और महिला ने भी उसी का समर्थन कर दिया "उसकी सारी दारू को सड़क पर उडेल दिया जाए। यही नहीं, उस पर हजारेक जुर्माना भी किया जाए।"

"क्यों बहनो!" दल प्रमुख ने अन्य महिलाओं को संबोधित किया।

"ठीक है! ठीक है!" सभी महिलाओं ने एक स्वर से समर्थन किया।

प्रस्ताव पारित होते ही सारी महिलाएं चढ़ाई वाले रास्ते पर हो लीं। तीसेक मिनट बाद वे सभी किशनुवा की दुकान में जा पहुंची। उन्होंने उसकी दुकान को घेर लिया। कुछ अंदर से दारू की कनस्तरियां ले आईं। उन्हें उन्होंने सड़क पर उडेल दिया। हक्का–बक्का किशनुवा देखता ही रह गया। उसे हजारेक रुपये जुर्माने के भी भरने पड़े। इसके बाद सभी महिलाएं गांव आकर आने–अपने काम धंधे में लग गईं।

उधर, अपने घर के आगे बाड़े में बैठी हुई रमोती दादी की चिपचिपी आंखें नीचे घाटी में बह रही बदनगढ़ नदी पर ही टिकी हुई थीं। उसकी बूढ़ी आंखें उस नदी के इतिहास की साक्षी रही हैं। दादी को लगता है जैसे कि उसी की तरह वह नदी भी बूढ़ी होती जा रही है।

मनुष्य का तो आरंभ से ही नदी के साथ सगा रिश्ता रहता रहा है। तभी तो उसके पूर्वज नदी–घाटियों के किनारे बसते रहे हैं।

नदिया बहती रहो! बहती रहो!

वर्षों पूर्व दादी के श्वसुर भी तो यही गीत–पंक्ति गाते हुए जैसे नदी की आरती ही उतारा करते थे। तब यह नदी सचमुच में नदी होती थी। उसमें रवानगी थी। प्रदूषण का कहीं नामोनिशान तक न था। भोले–भाले ग्रामीण इस शब्द से अपरिचित थे। नदी से उनका सगा रिश्ता था। खेतों की सिंचाई से लेकर पेय जल की पूर्ति यही नदी तो किया करती थी। सिंचाई के लिए इससे गूल (छोटी नहर) निकाली जाती थी। सारे गांव वाले नदी से ही पीने का पानी लाया करते थे। उन्हें जब कभी मछलियां पकड़नी होती थीं तो वे जाल लेकर नदी में उतर जाया करते थे।

पांचवें दशक तक इस बदनगढ़ नदी के किनारे दो–तीन घटवार (पनचक्की) चला करते थे। जब भी किसी के यहां ब्याह–शादी होती, कोई बड़ा समारोह होता तो इन्हीं घटवारों से अनाज पीसा जाता था। घटवारों के चारों ओर आमों का घना बगीचा हुआ करता था। उसमें हर किस्म के आम के पेड़ होते थे। आने–जाने वाले बटोहियों को इन पेड़ों की घनी छांह के नीचे आराम मिला करता था।

लेकिन आज? आज तो इस नदी पर अनेक प्रश्न चिन्ह लगने लगे हैं। आज के गांव भी तो पहले जैसे गांव नहीं रह गए हैं। लेकिन नदी भी क्या करे? कुछ तो उसका जल–स्रोत ही सूख गया है। बाकी की कसर जल आपूर्ति विभाग ने निकाल ली है। जब से ऊपर की ओर कहीं बांध बना है, बेचारी नदी एक पतली धारा में ही सिमट आई है। नदी पार के घटवार अब खंडहर हो चले हैं। उन खंडहरों में अनेक अवांछनीय तत्व पनाह लिए हुए हैं। गांव का गोवरधन उसी खंडहर में भट्टी दहका कर न जाने किन–किन जड़ी– बूटियों को उबाल–छान कर दारू बनाया करता है। सारी दारू वह किशनुवा को भेजा करता है। गांव की संस्कृति को शहर की नंगी–बुची संस्कृति बरबाद कर रही है।

"दादी!" किसी युवक ने रमोती दादी की तंद्रा भंग की।

दादी उस युवक को देखने लगी। सोबनसिंह का बेटा पूरा छैल–छबीला ही बना हुआ था। दादी ने पूछा, "क्या है रे?"

"मच्छी खाओगी?" युवक ने आंखें मटका कर पूछा।

दादी ने गहरा उच्छ्वास भरा, "अब नदी में मछली कहां रही रे? वो तो जल की रानी हुआ करती है। जब जल ही नहीं रहेगा तो रानी कहां

से आएगी?"

"वाह दादी।" उस युवक ने जोर का ठहाका लगाया, "नदी में मछलियों की कोई कमी नहीं है। मैं तो आज ढेर सारी मछलियां लाऊंगा।"

दादी फिस्स से हंस दी। युवक उधर से नीचे नदी की ओर चल दिया। गांवों के जो युवक शहरों में नौकरी किया करते हैं, वे गर्मियों में दस–पंद्रह दिन के लिए गांव चले आते हैं। वे ही ग्रामीण संस्कृति को प्रदूषित किया करते हैं। उनके आगमन पर किशनुवा की तो पौबारह ही हो आती है। शहर से आए युवक उसकी दारू को पानी की तरह से बहाया करते हैं।

दादी फिर से अतीत का दामन पकड़ने लगी।

बरसात के दिनों में बदनगढ़ नदी की शोभा देखते ही बनती थी। ऊपर ही पहाड़ियों का बरसाती पानी दूसरे नालों के साथ मिलकर नदी में आ मिलता था। तब नदी भी तो सर्पिणी की तरह से फुंफकारती रहती थी। उसके दोनों तट पानी से लबालब भरे हुए होते थे। गांव वाले कंधों पर जाल लटकाए हुए नदी में जा उतरते थे। उसके बाद वे टोकरियां भर–भर कर मछलियां लाया करते। सारे गांव वाले स्वाद ले–लेकर मछली–भात खाया करते थे।

असूज–कातिक के दिनों में यह नदी शांत भाव से बहा करती। उसका पानी इतना स्वच्छ और पारदर्शी होता कि ग्रामीण युवतियां उसी को दर्पण बना कर अपने को सजाया–संवारा करती थीं। जेठ के दिनों में गर्मी उतारने के लिए युवक घंटों तक उसमें नहाते रहते थे। युवतियां कलशियां भर–भर कर पेय जल लातीं। रात को जब सारी घाटी में नीरवता छा जाती तो नदी का स्वां–स्वां का स्वर उस शांति को भंग किया करता। लगता जैसे घाटी में कोई गीत गा रहा हो – नदिया, बहती रहो! बहती रहो!

ऊपर की ओर से शोर–शराबे के स्वर सुनाई दिए। दादी उधर ही देखने लगी। कोई बुजुर्ग जोर–जोर से चीखता जा रहा था, अरे ओ गोपाल! ऊपर आ जा! खबरदार जो नदी में ज़हर घोला!

अब रमोती दादी को माजरा समझते देर नहीं लगी। गांव वाले सोवनसिंह के बेटे गोपाल को नदी में जाने से रोक रहे थे। पिछले वर्ष भी वह आठ–दस दिन के लिए गांव आया हुआ था। तब उसने नदी में बारूद से विस्फोट कर मछलियां मारी थीं। किसी दूसरे गांव के युवक ने तो नदी में एल्ड्रीन की पूरी शीशी ही उडेंल दी थी। उन जहरीली मछलियों को खा कर आधे गांव वाले बीमार हो आए थे।

ऐसा क्यों होता है? आदमी अपने स्वार्थ के लिए ऐसे खोटे काम क्यों किया करता है? प्रश्नों से घिरी दादी का माथा चकराने लगा। अगले ही क्षण वह बाड़े से उठकर ऊपर गांव की ओर चल दी। सभापति के आंगन में बहुत सारे लोग जमा हो आए थे। लाठी ठकठकाती हुई दादी भी वहीं जा पहुंची।

सभापति के आंगन में सारे गांव वालों ने गोपाल को घेरा हुआ था। सभापति उस पर लाल–पीले होने लगे, "अरे मूर्ख! तुझे नदी में ज़हर घोलने की कैसे सूझी?"

गोपाल अपराध भाव से गर्दन झुकाए खड़ा था।

"अरे, तुझे मच्छी ही मारनी थी तो कांटा डाल कर पकड़ता या फिर जाल ही लगा लेता।" किसी बुजुर्ग ने उसे समझाया।

गोपाल तो वहीं शर्म से पानी पानी ही होने लगा। उसके बाद सभापति ने एक सार्वजनिक घोषणा की, "सभी लोग कान खोल कर सुन लो। आज देश में चारों ओर प्रदूषण की दुहाई दी जा रही है। जल–थल सभी तो प्रदूषित होते जा रहे हैं। लेकिन अपने पहाड़ों में ऐसा नहीं होगा। हम जंगलों को नंगा नहीं रहने देंगे। उन्हें वीरान न होने देंगे। रही पानी की समस्या तो उसका भी समाधान सुन लो। कल सुबह नौ बजे हम सभी नदी पूजन को चलेंगे। उसके पूजन के बाद हम लोग नदी से ही पीने का पानी लाया करेंगे। ऐसे ही, जैसे हम लोग वर्षों पहले लाया करते थे।"

"ठीक कहते हो! गांव के किसी बुजुर्ग ने जोड़ा इन सरकारी नलों का क्या भरोसा? अरे, ये तो बैसाखियां हैं। इनके सहारे हम लोग कब तक चल सकेंगे? इनमें अगर पानी न आए तो हम प्यासे ही मर जाएं?"

इस प्रकार सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि कल सुबह ही नदी–पूजन के बाद सारे गांव वाले नदी से ही पेयजल लाया करें।

गांव के पंच–परमेश्वरों की बातें सुनकर दादी को लगने लगा, जैसे उसके बीते हुए दिन फिर लौट आए हैं। अब उसके सोच की दिशा ही बदलने लगी। उसने भी लोगों को संबोधित किया, "अब मेरी भी सुन लो। जब से हमारे यहां बत्ती आई है, बहू–बेटियां चक्की पीसना ही भूल गई हैं। अगर बिजली न आए तो क्या हम भूखे ही मर जाएंगे?"

"नहीं, दादी! महिला मंडल की मुखिया बोली,, ऐसा नहीं होगा। कल से ही सभी बंद पड़ी चक्कियां अनाज पीसने लगेंगी।"

"यह हुई न बात!" दादी ने आगे जोड़ा, "अब तुम लोग बंद पड़े घटवारों को भी सुधार लो। ब्याह–शादियों पर ये अनाज पीसा करेंगे।"

"उनकी मरम्मत हम लोग दो–चार दिन में कर लेंगे, दादी।" किसी युवक ने कहा।

दादी की कल्पना को पंख लगने लगे। वह उन दिनों के सपने देखने लगी, जब गांव वाले सुख–समृद्धि का जीवन जीने लगेंगे। लाठी ठकठकाती हुई उधर से वह नीचे अपने घर चली आई।

नीचे घाटी में बदनगढ़ नदी की धारा शांत भाव से बह रही थी। दादी उसकी महीन धारा को फिर से देखने लगी। वह उन दिनों की कल्पना करने लगी जब नदी फिर से भरी–भरी होगी। वे दिन अवश्य लौटेंगे जब लोग कहेंगे, नदिया, बहती रहो! बहती रहो! ❑

ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका

नसरून निशा*

मध्य प्रदेश के दुर्ग जिले में महिलाओं के छोटे छोटे स्व–सहायता समूह गठित किए हैं जिनमें महिलाएं नियमित रूप से निश्चित राशि की बचत करती हैं और जरूरत पड़ने पर वहां से कर्ज लेती हैं। "दीदी बैंक" नाम के ये समूह जिले की साक्षर समिति के प्रयासों का परिणाम हैं। इससे महिलाएं अब छोटे–छोटे व्यवसाय भी शुरू कर रही हैं। यह काम महिलाओं में आ रही जागृति और महिला सशक्तिकरण के लिए किए गए सरकार के प्रयासों का ठोस रूप है।

जिस देश में लगभग तीन चौथाई आबादी गांवों में बसी हो, और कृषि ही अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार हो, उस देश में ग्रामीण विकास के बिना राष्ट्र के विकास की कल्पना ही भला कैसे संभव है? यही कारण है कि योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया के प्रथम सोपान यानी पहली पंचवर्षीय योजना से ही ग्रामीण विकास सरकार की मुख्य प्राथमिकताओं में शामिल रहा है। देश की बहुत बड़ी जनसंख्या, विस्तृत क्षेत्रफल तथा सीमित संसाधनों के कारण अपेक्षित परिणाम चाहे नहीं मिल पाए हैं, परन्तु यह भी सत्य है कि सरकार के अब तक के प्रयासों से ऐसा बुनियादी ढांचा खड़ा हो चुका है जिसके बल पर ग्रामीण विकास का सपना साकार होने की आशा की जा सकती है।

भारत जैसे विशाल देश में भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में विभिन्नता के कारण ग्रामीण विकास के लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करना आसान नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में वस्तुतः ग्रामीण विकास को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा जाना आवश्यक है। बढ़ती जनसंख्या, गरीबी, अशिक्षा, बीमारी, बेरोजगारी, भूमि तथा अन्य सभी संसाधनों का असामान्य बंटवारा, सामाजिक अन्याय जैसी अनेक समस्याएं ग्रामीण भारत के विकास में बाधक हैं। महात्मा गांधी ने सच कहा था कि – *भारत का आधार और आत्मा गांव है। यदि भारत का विकास करना है तो गांवों तथा ग्रामवासियों का विकास करना होगा।* इस मौलिक तथ्य से हम सब परिचित हैं, बावजूद इसके स्वतंत्रता–प्राप्ति के तुरंत बाद से शुरू किए ग्रामीण विकास के प्रयास पूर्णतः सफल नहीं हो पाए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कारण विकास कार्यों में ग्रामीणों की सहभागिता का अभाव है।

यदि गहराई से देखा जाए तो अशिक्षा तथा जागरूकता की कमी के कारण ही ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों में लोगों की, विशेषकर महिलाओं की, सहभागिता नहीं हो पाई। ग्रामीण क्षेत्र की अधिकतर महिलाएं निरक्षर हैं। निरक्षरता तथा सामाजिक रूप से कमजोर महिलाओं की सहभागिता न्यूनतम है। गांवों में वे घर में खाना बनाने, सफाई करने, पानी लाने, बच्चों की देखभाल करने के साथ–साथ खेतों के काम में भी हाथ बटाती हैं। उनके इस योगदान को किन्हीं आंकड़ों की सहायता से नहीं आंका जा सकता। परन्तु नई पंचायती राज व्यवस्था लागू होने से पहले विकास योजनाओं को बनाने और लागू करने में उनका योगदान नगण्य था। अब पंचायती राज व्यवस्था के तहत महिलाओं के लिए एक तिहाई पदों के आरक्षण से वे सक्रिय भूमिका निभाने लगी हैं। गांवों में यदि परिवार में शुरू से ही लड़कियों को लड़के के बराबर मानकर उन्हें आगे बढ़ने के समान अवसर दिये जाएं तो भविष्य में वे भी आगे आकर ग्रामीण विकास में तेजी लाने और अपने परिवार तथा देश की प्रगति को नई दिशा देने में सहायक होंगी।

ग्रामीण महिलाओं को संगठित व सम्बलीकृत करके ही विकास योजनाओं में इस तरह से भागीदारी बनाया जा सकता है कि उनसे सही अर्थों में विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

* शोधकर्ता, मानव एवं प्राकृतिक संसाधन केन्द्र, दुर्ग (म.प्र.)

ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमों में महिलाएं भी समान रूप से हाथ बंटाती हैं

दीदी बैंक : ग्रामीण विकास का प्रयास

महिलाओं के सम्बलीकरण हेतु मध्य प्रदेश की साक्षरता समिति, दुर्ग द्वारा नवसाक्षर महिलाओं को संगठित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास के अंतर्गत महिला मंडलों, सहकारी समितियों, डवाकरा समूहों आदि का गठन किया गया है। सूदखोरी की प्रवृत्ति तथा इस प्रवृत्ति का शिकार होती महिलाओं को इस चंगुल से निकालने और महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए समिति ने 'दीदी बैंक' की स्थापना की है। इस दिशा में किए गए प्रयासों के परिणाम उत्साहजनक दृष्टिगोचर हुए हैं। आर्थिक, सामाजिक और वैचारिक समानता के आधार पर 10–15 महिलाओं का समूह बनाकर नियमित रूप से निश्चित राशि की बचत करने और जरूरत पड़ने पर इस बचत राशि से ऋण लेने के लिए स्व–सहायता समूह गठित किये जा रहे हैं। दुर्ग जिले में आज इस प्रकार के 1,000 से अधिक सक्रिय स्व–सहायता समूह दीदी बैंक बन चुके हैं। मूल रूप से बचत तथा ऋण लेन–देन के लिए गठित दीदी बैंकों के बाद समिति अब अपने स्तर से विविध आर्थिक उत्पादन गतिविधियां आरंभ कर रही है। जैसे – आटा चक्की, लाऊड स्पीकर, बर्तन किराया भंडार, टेन्ट हाऊस, मुर्गीपालन, सामूहिक खेती, आम का बगीचा व बड़ी पापड़ आदि। साक्षरता अभियान के माध्यम से महिलाओं में आई जागृति का व्यावहारिक स्वरूप दीदी बैंक के रूप में दिख रहा है।

जिले के विकासखंड गुण्डरदेही में ग्राम गब्दी है जो जिला मुख्यालय से 45 कि.मी. दूरी पर है। इस गांव में महिलाओं का संगठन मजबूती का परिचायक है। इस गांव में दो दीदी बैंक बनाये गये हैं। एक दीदी बैंक में 11 सदस्य हैं और दूसरे दीदी बैंक में 15 सदस्य हैं। इन दोनों दीदी बैंकों की अध्यक्ष श्रीमती चंद्रकला नायक है जो सरपंच है, और अक्षर सैनिक भी रही हैं। 'दीदी बैंक' का नाम उन्होंने दिया है 'नवसाक्षर दीदी बैंक' इस बचत के माध्यम से महिलाएं ऋण देती हैं। एक दूसरे सदस्यों (महिलाओं) को जरूरत के समय इस पैसा का लाभ लेती हैं। इस गांव में व्यक्तिगत अवलोकन से पता चला है कि महिलाएं बढ़–चढ़कर समाज में संगठन और नेतृत्व में भागीदार हो रही हैं। महिलाओं ने नेत्र शिविर आयोजित किये। उस दौरान जन सहयोग से मरीजों के भोजन की व्यवस्था और आपरेशन के दौरान उनकी खाने की विशेष व्यवस्था महिलाओं ने की। इन महिलाओं ने श्रमदान करके पुल बनाया और पाइप लगाया। इतना भारी काम, जो पुरुष करते हैं उसे महिलाओं ने कर के दिखाया। 15 नवसाक्षर महिलाओं ने 8 एकड़ जमीन में अलसी की खेती भी की। महिलाओं का गठन इतना मजबूत है कि महिलाएं कहती हैं, "हमारी सरपंच जीते या न जीते, लेकिन हमारी समिति मजबूत बनी रहेगी।"

(शेष पृष्ठ 42 पर)

उपभोक्ता : अधिकार और संरक्षण

संजय कुमार रोकड़े

भारत में उपभोक्ता दब्बू है, उसे अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं है, इसलिए व्यवसायियों द्वारा अनेक तरह से उसका शोषण किया जाता है। उसके हितों की रक्षा के लिए सरकार ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 तथा अन्य कई नियम बनाए हैं। उसे न्याय दिलाने के लिए जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर संरक्षण मंचों की व्यवस्था की गई है। इन मंचों से पैरवी के लिए उसे किसी वकील की सहायता लेने की भी जरूरत नहीं। लेकिन आम लोगों को इस सबके बारे में जागरूक बनाने की जरूरत है।

लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सजग करने के लिए उपभोक्ता आंदोलन की जरूरत

आज हर इंसान उपभोक्ता है। उपभोक्तावाद के इस युग में उपभोक्ता संरक्षण के लिए उठ रही आवाजें उपभोक्ताओं पर हो रहे अत्याचारों का संकेत देती हैं। आधुनिक व्यवसाय उपभोक्ता–प्रधान न होकर विक्रय–प्रधान होता जा रहा है तथा यह बात पुरानी हो गई है कि उपभोक्ता बाजार का राजा है। उपभोक्तावाद के इस युग में उपभोक्ता का शोषण अनेक प्रकार से किया जा रहा है। मिलावट, गलत माप–तोल, मूल्य वृद्धि, कृत्रिम अभाव, झूठे आश्वासनों, भ्रामक प्रचार, मुनाफाखोरी आदि द्वारा उपभोक्ता का शोषण जारी है। आज उपभोक्ता असंगठित, असहाय, उपेक्षित और शोषित है। उपभोक्ता अधिकारों का निरंतर हनन किया जा रहा है। वह व्यवसायियों के अत्याचारों को सहता है। आज का उपभोक्ता देख सकता है सुन सकता है लेकिन बोल नहीं सकता।

उपभोक्ता के हितों की रक्षा और उनके समुचित संरक्षण के लिए प्राचीन काल से ही उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता महसूस की जाती रही है।

व्यवसाय में बढ़ती धन संग्रह की लालसा, लाभ का लालच और स्वहित की चिंता के कारण व्यवसायी अनैतिक हथकंडों से उपभोक्ता का शोषण करता है। आज उपभोक्ता को श्रेष्ठ सेवा प्रदान करने की प्रतिस्पर्धा का स्थान 'उपभोक्ता को भ्रमित करने' तथा 'ग्राहक की इच्छा को प्रभावित करने' की प्रतिस्पर्धा ने ले लिया है। व्यवसायी यह जानते हैं कि भारतीय उपभोक्ता दब्बू है और वह सब जानते हुए भी अपने शोषण के विरुद्ध आवाज नहीं उठाता।

उपभोक्ता के अधिकार

उपभोक्ता के अधिकारों की रक्षा के लिए सरकार ने अनेक उपाय किए हैं। उपभोक्ता को उन वस्तुओं के विरूद्ध सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है जो जीवन तथा संपत्ति के लिए हानिकारक या प्राणघातक हो। वह किसी वस्तु को क्रय करने से पूर्व उस वस्तु की किस्म, गुण, मूल्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है। बाजार में उपलब्ध वस्तुओं में से अपनी रुचि और पसंद की वस्तु खरीद सकता है। किसी वस्तु को खरीदने पर उसमें दोष की वजह से उसे हानि या असुविधा होती है तो वह इसके लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। ऐसी गलतियों की पूनर्रावृत्ति न हो इसके लिए सेवा की कमियों और सुझावों को प्रकट करने का अधिकारी है। उचित कीमत और सही समय पर आधारभूत वस्तुएं प्राप्त करना उसका अधिकार है। इसके अलावा सरकार ने समय समय पर कई नियम और अधिनियम बनाए हैं जिससे उपभोक्ता के हितों की समुचित सुरक्षा हो सके। वैसे तो कई नियम–अधिनियिम लागू हैं लेकिन उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 उपभोक्ताओं के हितों का प्रबल प्रहरी बन गया है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप वस्तुएं तथा सेवाएं उपलब्ध कराना है।

उपभोक्ता संरक्षण कानून

उपभोक्ता संरक्षण कानून एक महत्वपूर्ण कानून है जो उपभोक्ताओं को सस्ता, सुलभ तथा शीघ्र न्याय दिलाता है। इस कानून को लागू करने के लिए तीन–स्तरीय व्यवस्था की गई है। जिला स्तर पर जिला मंच उपभोक्ता संरक्षण, राज्य स्तर पर 'राज्य आयोग उपभोक्ता संरक्षण' तथा राष्ट्रीय स्तर पर 'राष्ट्रीय आयोग उपभोक्ता संरक्षण' है जो नई दिल्ली में स्थित है। जिला मंच को 5 लाख रुपये तक के मूल्यांकन वाले मामले की सुनवाई का अधिकार है, राज्य आयोग को 5–20 लाख और राष्ट्रीय आयोग को 20 लाख रुपये से अधिक के मूल्याकन वाले मामले की सुनवाई का अधिकार है। जिला मंच के निर्णय के विरूद्ध अपील राज्य आयोग में 30 दिन में की जा सकती है और राज्य आयोग के निर्णय के विरुद्ध राष्ट्रीय आयोग में 30 दिन के भीतर अपील जा सकती है। राष्ट्रीय आयोग के निर्णय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में 30 दिन के अन्दर की जा सकती है।

उपभोक्ता को अपना परिवाद संबंधित क्षेत्राधिकार वाले मंच या आयोग में प्रस्तुत करना होता है। परिवाद प्रस्तुत करने के लिए किसी अधिवक्ता की जरूरत नहीं होती। कार्यवाही सादे कागज पर की जाती है तथा किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगता। परिवाद प्रस्तुत करने की अवधि दो वर्ष है।

यदि कोई उपभोक्ता किसी व्यापारी, विक्रेता, निर्माता को अनुचित रूप से परेशान करने के लिए मिथ्या परिवाद प्रस्तुत करता है तो उसे दण्डित किया जा सकता है। उपभोक्ता संरक्षण के नियमों को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सभी वर्ग के लोगों को उपभोक्ता आंदोलन से जोड़ा जाना चाहिए। सरकार को स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठनों को पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए। व्यावसायिक संगठनों को उपभोक्ता संघों के साथ पूर्ण सहयोग करना चाहिए। भ्रामक तथा मिथ्या विज्ञापन करने वाले व्यवसायियों के विरुद्ध सख्त कार्यवाही की जानी चाहिए। पीड़ित उपभोक्ताओं को निशुल्क कानूनी सहायता दी जानी चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपभोक्ता संरक्षण वर्तमान समय की मांग है, और इसे सफल बनाने के लिए सभी वर्गों का सहयोग अपेक्षित है। ❑

कुरूक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक,
प्रकाशन विभाग,
ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7,
आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

मध्य प्रदेश के नीमच जिले के ग्राम बनी में श्रमदान से सड़क निर्माण करते हुए गांववासी

सफलता की कहानी

श्रमदान से सड़क सुधार की अभिनव शुरूआत

जगदीश मालवीय

मध्य प्रदेश के नवगठित नीमच जिले में व्यापक जन सहयोग और श्रमदान से पुराने तालाबों के जीर्णोद्वार की कामयाब मुहिम के पश्चात मनासा तहसील के बनी गांव के निवासियों ने सामुहिक श्रमदान कर बनी से बरखेड़ा तक 4 किलोमीटर लंबा पहुंचमार्ग बनाकर अन्य ग्रामों के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। श्रमदान के दौरान बनी गांव के वासियों ने जिस उत्साह का परिचय दिया वह देखते ही बनता था।

तहसील मुख्यालय से लगभग बारह किलोमीटर दूर स्थित दो सौ परिवारों वाला यह गांव पाटीदार बाहूल्य ग्राम है। गांव के लोगों ने स्व–प्रेरणा से गांव चौपाल पर बैठकर यह निर्णय लिया कि वे ग्राम बनी को बरखेड़ा से जोड़ने वाली सड़क का निर्माण स्थानीय सहयोग से करेंगे। इस निर्णय के साथ ही गांव का एक–एक व्यक्ति अपने हाथों में कुदाली, फावड़े और तस्ले लेकर निकल पड़ा श्रमदान करने।

सूर्य उदय के साथ ही विधिवत पूजा अर्चना के साथ सभी बनी वासी श्रमदान में जुट गए और देखते ही देखते सामुहिक श्रमदान ने अपनी पूर्ण गति प्राप्त कर ली। आवागमन को आसान बनाने और कीचड़ से मुक्ति पाने की लालसा प्रत्येक ग्रामीण के चेहरे पर देखी जा सकती थी। गांव के ट्रेक्टरधारी किसानों ने अपने ट्रेक्टरों की निःशुल्क सेवा उक्त कार्य में दी। प्रतिदिन लगभग 10 ट्रेक्टर ट्राली सड़क निर्माण में अपना सहयोग देने लगीं।

बिना किसी सरकारी सहायता और आर्थिक सहयोग से दो सौ ग्रामीणों ने अपनी कड़ी मेहनत की आहुति इस महायज्ञ में देना प्रारंभ कर दिया। एक दिन में करीब 225 ट्रेक्टर ट्राली गिट्टी बोल्डर सड़क पर डाले जाने लगे। ग्रामीणों की लगन, मेहनत और अपने ग्राम के विकास के लिए त्याग की भावना, एक सप्ताह तक किए गए श्रमदान के परिणामस्वरूप चार कि.मी. लंबा पहुंचमार्ग बनकर तैयार हो गया। इस कार्य में बिना कोई धनराशि खर्च हुए एक हजार पांच सौ मानवदिवस अर्जित किए गए, लगभग अठारह सौ से भी अधिक ट्रेक्टर ट्राली गिट्टी बोल्ड़र बिछाए गए।

ग्राम बनी के इस पहुंच मार्ग पर पहले बरसात के दिनों में कीचड़ हो जाने से ग्रामीणों को पैदल चलने में भी परेशानियों का सामना करना पड़ता था, वही श्रमदान के बाद अब इस सड़क पर न केवल ट्रेक्टर ट्राली, बल्कि कार जीप तथा मोटर साइकिल जैसे वाहन भी आसानी से आ–जा सकते हैं। यदि जिले के अन्य गांव के लोग भी बनी ग्राम के ग्रामीणों द्वारा किए गए श्रमदान से प्रेरणा लेकर अपने गांव की सड़क सुधार हेतु श्रमदान के लिए आगे आएंगे, तो वह दिन दूर नहीं होगा, जब देश की सभी सड़कें और पहुंच मार्गों का कायापलट हो जाएगा। ❑

पंचायतों में जनजा

जानकारी

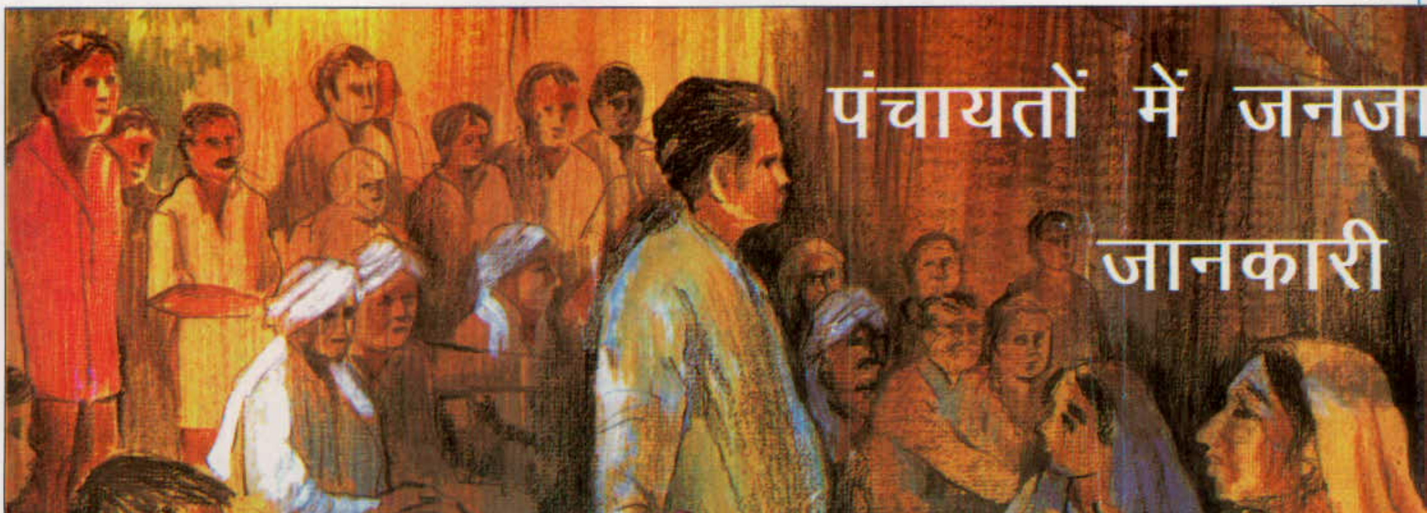

बुनियादी स्तर पर लोगों की सहभागिता एक ऐसा प्रभावशाली साधन है जिसके माध्यम से आर्थिक विकास और जनता की आकांक्षाओं को पूरा किया जा सकता है और यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि समाज के सबसे कमजोर वर्ग तक विकास के लाभ वास्तविक तौर पर पहुंचे। ऐसा माना जाता रहा है कि पंचायती राज संस्थाएं लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की सबसे उपयुक्त संस्थाएं है, जिन्हें पर्याप्त शक्तियां और उत्तरदायित्व सौपें जा सकते हैं ताकि वे स्थानीय आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण विकास की योजनाएं तैयार कर सकें और उन्हें क्रियान्वित कर सकें।

स्वतंत्रता के पश्चात् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम. प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् 1959 में पंचायतों का गठन हुआ लेकिन स्थानीय स्वशासन की स्वतंत्र इकाई के रूप में पंचायतें स्थापित नहीं हो पाई। तमाम विसंगतियों और पूर्व अनुभवों को दृष्टिगत् रखते हुए 73वां संविधान संशोधन अधिनियम पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्थिति तथा स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से 1993 में लागू किया गया। इसी संशोधन अधिनियम के अनुरूप 1993 में मध्यप्रदेश ने राज्य का पंचायती राज विधान 'मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1993' बनाया गया। इसी के साथ मई–जून 1994 में पंचायती राज संस्थाओं का मध्यप्रदेश में गठन हुआ।

पंचायती राज संस्थाओं को जहां संवैधानिक दर्जा देकर स्थायित्व प्रदान किया गया है वहीं महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्ग के लोगों हेतु आरक्षण की व्यवस्था की गई है जिससे समाज के इन सर्वाधिक उपेक्षित वर्गों को यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ और ग्रामीण नेतृत्व का एक नया वर्ग उभरकर सामने आया।

1991 की जनगणना के अनुसार भारत में लगभग 6.7 करोड़ जनजातीय लोग निवास करते हैं। ये देश की कुल जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत हैं और देश के 19 प्रतिशत भाग में निवास करते हैं। मध्यप्रदेश देश का सबसे बड़ा जनजातीय बहुल क्षेत्र है। प्रदेश की कुल जनसंख्या का

नेतृत्व और
स्तर
सन्दर्भ में अध्ययन

डा. आशीष भट्ट

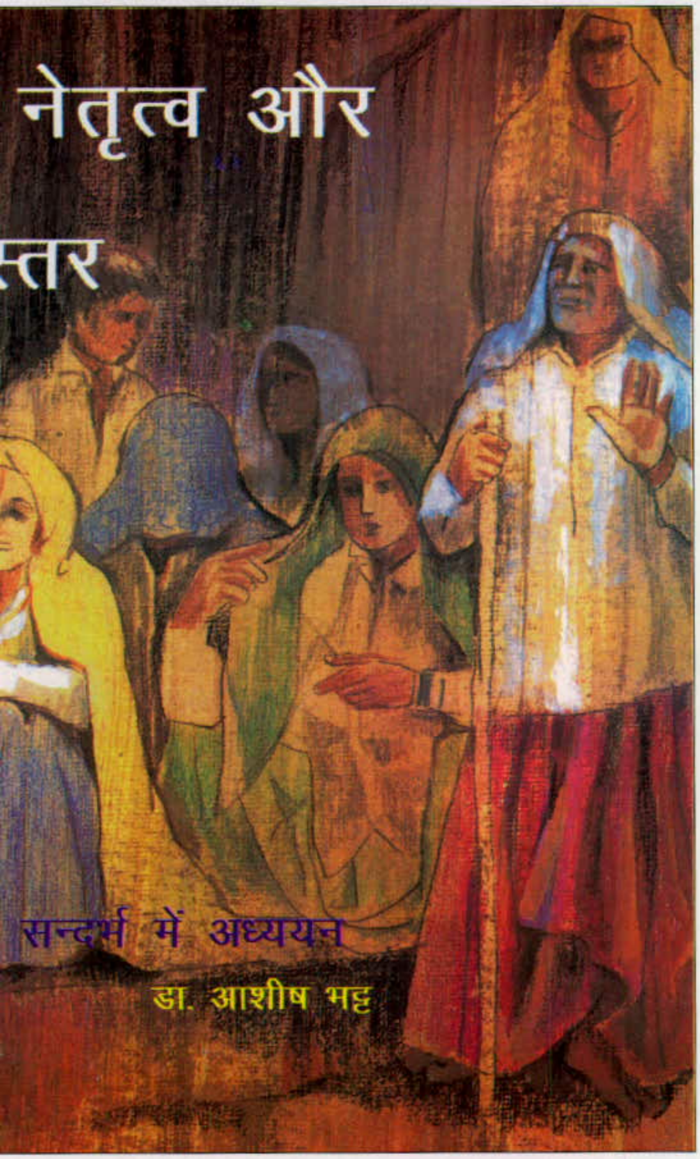

23.27 प्रतिशत जनजातीय लोगों का है। मध्यप्रदेश में सम्पन्न पंचायतों के चुनावों में आरक्षण की व्यवस्था के फलस्वरूप जनजातीय समाज की सहभागिता का स्तर बढ़ा है। मध्यप्रदेश में पंचायतों के विभिन्न स्तरों के कुल 4,84,394 स्थानों में से 1,44,735 स्थान अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधियों हेतु आरक्षित किए गये। इनमें जिला पंचायत के 13 अध्यक्ष तथा 267 सदस्य, जनपद पंचायतों के 147 अध्यक्ष और 2,780 सदस्य तथा ग्राम पंचायतों के 9,050 सरपंच और 13,638 पंचों के स्थान सम्मिलित हैं। इस प्रकार प्रदेश में पंचायतों के कुल स्थानों में से 29.88 प्रतिशत स्थान अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे गये और इसके फलस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में एक नया नेतृत्व वर्ग सामने आया है।

अध्ययन क्षेत्र और प्रविधि

प्रस्तुत लेख मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के अध्ययन पर आधारित है। जनसंख्या प्रतिशत के अनुसार झाबुआ जिला प्रदेश का सबसे बड़ा जनजातीय बहुल जिला है। 1991 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 11,30,405 में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 9,68,372 है जो कि जिले की कुल जनसंख्या का 85.66 प्रतिशत है। जिले में पंचायतों में निर्वाचित प्रतिनिधियों में 92.3 प्रतिशत प्रतिनिधि अनुसूचित जनजाति वर्ग से है। अध्ययन हेतु जिले की ग्राम पंचायतों में जनजातीय वर्ग के निर्वाचित सरपंच को इकाई के रूप में लिया गया है। जिले में 612 ग्राम पंचायतें हैं। यादृच्छिक आधार पर जिले के समस्त 12 विकास खण्डों से कुल 72 पुरुष और 36 महिला सरपंचों को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। चयनित सरपंचों का साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया।

गठन संबंधी जानकारी

मध्यप्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1993 द्वारा प्रदेश में पंचायती राज की दिशा में एक नई शुरुआत हुई है। समस्त प्रतिनिधि नए पंचायत राज कानून के तहत निर्वाचित होकर आए हैं। 90.74 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस संदर्भ में जानकारी है कि उनकी पंचायतों का गठन नए पंचायत राज कानून के तहत हुआ है जबकि 9.26 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस संदर्भ में जानकारी नहीं है और वे सभी उत्तरदाता महिला प्रतिनिधि हैं। (तालिका–1)

नए पंचायत राज अधिनियम द्वारा पंचायतों को अधिक अधिकार, सभी वर्गों को आरक्षण द्वारा समुचित प्रतिनिधित्व, पंचायतों के लिए वित्त की सुव्यवस्थित व्यवस्था, नियमित निर्वाचन आदि अनेक महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। पुरानी तथा नवीन पंचायती राज व्यवस्था के इन अंतरों को 88.89 प्रतिशत उत्तरदाता जानते हैं। जिन उत्तरदाताओं ने पुराने तथा नवीन पंचायती राज व्यवस्था में अंतर बताया है उनमें से 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा सरपंचों को अधिक अधिकार मिलना, 25.13 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा पंचायतों को कार्य करने में अधिक स्वतंत्रता मिलना तथा 13.89 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने शासकीय अधिकारियों द्वारा इन संस्थाओं तथा प्रतिनिधियों के प्रति ध्यान दिए जाने को प्रमुख अंतरों के रूप में निरूपित किया। 13.89 प्रतिशत उत्तरदाता व्यवस्था में अंतर तो महसूस करते हैं किन्तु उन अंतरों को स्पष्ट नहीं कर पाए। (तालिका–2 और 3)

बैठक तथा गणपूर्ति संबंधी जानकारी

मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम के माध्यम से ग्रामसभा को अनेक शक्तियां और अधिकार प्रदान कर प्रभावी बनाया गया है। ग्रामसभा की प्रत्येक तीन माह में कम से कम एक बैठक आयोजित की जाएगी और बैठक की गणपूर्ति हेतु कुल ग्राम सभा के सदस्यों के एक दशमांश सदस्यों की उपस्थिति की अनिवार्यता संबंधी प्रावधान भी किया गया है। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा मध्यप्रदेश पंचायत राज (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1997 द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों की पंचायतों हेतु विशेष उपबंध किए गए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण उपबंध जनजातीय क्षेत्रों की ग्राम सभाओं के संदर्भ में है जिसके अनुसार अनुसूचित क्षेत्रों की ग्रामसभा की बैठकों में गणपूर्ति हेतु आवश्यक सदस्यों की संख्या कुल सदस्यों के एक दशमांश के स्थान पर एक तिहाई कर दी गई है।

इस संदर्भ में 65.74 प्रतिशत उत्तरदाताओं को ग्रामसभा की बैठक के

अंतराल की सही जानकारी है जबकि 36.11 प्रतिशत उत्तरदाताओं को ही ग्राम सभा की बैठक हेतु आवश्यक गणपूर्ति की जानकारी है। (तालिका–4 और 5)

ग्राम पंचायत के संदर्भ में मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम में प्रावधान किया गया है कि ग्राम पंचायत की बैठक प्रत्येक माह में कम से कम एक बार आयोजित की जायेगी। 85.19 प्रतिशत उत्तरदाताओं को ग्राम पंचायत की बैठक के अंतराल के बारे में सही जानकारी है जबकि 14.81 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस संदर्भ में जानकारी नहीं है।(तालिका–6)

अशिक्षा, आर्थिक रूप से अत्यधिक पिछड़ापन और जागरूकता के अभाव के कारण जनजातीय क्षेत्रों में ग्राम सभा प्रभावी रूप ग्रहण नहीं कर पाई है। ग्राम सभा में लोगों की सहभागिता नहीं के बराबर है। इस कारण क्षेत्र में ग्राम सभाओं का आयोजन मात्र औपचारिकता बन कर रह गया है। जनसहभागिता के अभाव के रहते प्रतिनिधियों की भी न तो इनके आयोजन में कोई रुचि है और न ही इस संदर्भ में कोई जानकारी प्राप्त करने में।

समितियों के बारे में जानकारी

मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम में ग्राम पंचायतों में विभिन्न कार्यों के सम्पादन तथा कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए विभिन्न समितियों के गठन संबंधी प्रावधान किए गए हैं और ये समितियां ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेंगी जो ग्राम पंचायत द्वारा उनको सौंपी जाएं। 85.19 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इन समितियों के गठन के संदर्भ में जानकारी है। जिन उत्तरदाताओं को इन समितियों के गठन संबंधी जानकारी है वे समस्त शिक्षा समिति के बारे में जानते हैं जबकि वन समिति के बारे में जानकारी 65.21 प्रतिशत उत्तरदाता, ग्राम रक्षा समिति तथा निर्माण समिति के बारे में क्रमशः 44.56 और 34.78 प्रतिशत उत्तरदाता तथा सामान्य प्रशासन समिति के बारे में 2.17 प्रतिशत उत्तरदाता जानकारी रखते हैं। (तालिका 7 और 8)

हस्तांतरित विभागों के संदर्भ में जानकारी

भारतीय संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर सामाजिक न्याय तथा आर्थिक विकास संबंधी 29 विषयों को योजना निर्माण तथा क्रियान्वयन हेतु पंचायतों के सुपुर्द किया गया है। मध्यप्रदेश के पंचायत राज विधान में इस अनुसूची को अनुसूची–4 के रूप में सम्मिलित किया गया है तथा इसी के अनुरूप मध्यप्रदेश में पंचायतों को ग्रामीण विकास से संबंधित सभी विभागों के महत्वपूर्ण अधिकारों और कार्यों को हस्तांतरित किया गया है। तीनों स्तरों की पंचायतों को अलग–अलग शक्तियों से वेष्ठित किया गया है। ग्राम पंचायतों को अधिकांशतः ग्राम विकास से सीधे जुड़े विभागों के नियंत्रण और निरीक्षण के अधिकार दिए गये हैं।

इस संदर्भ में 85.19 प्रतिशत उत्तरदाताओं को जानकारी है कि उन्हें कई शासकीय विभागों के नियंत्रण, निरीक्षण तथा कार्यों के क्रियान्वयन के अधिकार दिए गए हैं। ऐसे उत्तरदाता जिन्हें कार्यों तथा शक्तियों के हस्तांतरण की जानकारी है उनमें से 95.65 प्रतिशत उत्तरदाताओं को शिक्षा विभाग, 85.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं को महिला तथा बाल विकास विभाग, 27.17 प्रतिशत उत्तरदाताओं को स्वास्थ्य और 10.86 प्रतिशत उत्तरदाताओं को राजस्व विभागों के नामों की जानकारी हस्तांतरित कार्यों के संदर्भ में है। (तालिका–9 और 10)

इस प्रकार जनजातीय प्रतिनिधियों के पंचायती राज संबंधी जानकारी के स्तर के विवेचन से स्पष्ट है कि अधिकांश प्रतिनिधियों को इस बात की जानकारी है कि उनकी पंचायतों का गठन नए पंचायत राज कानून के तहत हुआ है। थोड़े बहुत प्रतिनिधि जिन्हें इस बात की जानकारी नहीं है वे समस्त महिला प्रतिनिधि हैं। तीन चौथाई से अधिक प्रतिनिधि नए और पुराने पंचायत राज में अंतर महसूस करते हैं तथा इन अंतरों में सबसे प्रमुख अंतर सरपंचों को नए कानून में अधिक अधिकार मिलना बताते हैं। इसके अतिरिक्त कार्य करने में अधिक स्वतंत्रता, आरक्षण और शासकीय अधिकारियों द्वारा महत्व दिया जाना, अन्य प्रमुख अंतर हैं।

ग्राम सभा के संबंध में जानकारी के स्तर को देखा जाए तो जनजातीय प्रतिनिधियों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। ग्राम सभा की बैठक के अंतराल की जानकारी तो दो तिहाई प्रतिनिधियों को है किन्तु बैठक हेतु आवश्यक गणपूर्ति की जानकारी मात्र एक तिहाई प्रतिनिधियों को ही है। महिला प्रतिनिधियों के संदर्भ में देखा जाए तो लगभग 95 प्रतिशत महिला प्रतिनिधियों को बैठक के लिए आवश्यक गणपूर्ति की जानकारी नहीं है। अशिक्षा, आर्थिक रूप से अत्यधिक पिछड़ापन और जागरूकता के अभाव के कारण जनजातीय क्षेत्रों में ग्राम सभा प्रभावी रूप ग्रहण नहीं कर पाई है। ग्राम सभा में लोगों की सहभागिता नहीं के बराबर है। इस कारण क्षेत्र में ग्राम सभाओं का आयोजन मात्र औपचारिकता बन कर रह गया है। जनसहभागिता के अभाव के रहते प्रतिनिधियों की भी न तो इनके आयोजन में कोई रुचि है और न ही इस संदर्भ में कोई जानकारी प्राप्त करने में। इसी प्रकार ग्राम पंचायत की बैठक के संदर्भ में देखा जाए तो अधिकांश प्रतिनिधियों को बैठक के संबंध में जानकारी है। जिन प्रतिनिधियों को इस संबंध में जानकारी नहीं है उनमें एक बड़ा प्रतिशत महिला प्रतिनिधियों का है। लगभग एक तिहाई महिला प्रतिनिधियों को इस संबंध में जानकारी नहीं है।

ग्राम पंचायतों में विभिन्न कार्यों हेतु गठित समितियों के बारे में जानकारी भी अधिकांश प्रतिनिधियों को है। जिन प्रतिनिधियों को इन समितियों के गठन के संबंध में जानकारी है उनमें से सभी को शिक्षा समिति के बारे में जानकारी है। वन समिति के संबंध में जानकारी लगभग दो तिहाई प्रतिनिधियों को है। प्रतिनिधियों की इन दो समितियों के बारे में जानकारी का स्तर अच्छा होने के पीछे प्रमुख कारण जिले में पिछले कुछ वर्षों में साक्षरता और जलग्रहण प्रबंधन के क्षेत्र में जारी अभियान है।

इस कारण इन क्षेत्रों में जिले में अत्यधिक कार्य और प्रचार–प्रसार हुआ है तथा उसमें इन समितियों की भी मुख्य भूमिका होना है।

सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास संबंधी कार्यों के निर्वहन के लिए प्रदेश में ग्रामीण विकास से संबंधित समस्त विभागों के अधिकारों तथा कार्यों को पंचायतों को हस्तांतरण के बारे में लगभग तीन चौथाई से अधिक प्रतिनिधियों को जानकारी है तथा इन हस्तांतरित विभागों में शिक्षा तथा महिला और बाल विकास विभाग की जानकारी अधिकांश प्रतिनिधियों को है क्योंकि ये विभाग स्कूल और आंगनवाड़ियों के माध्यम से सीधे गांवों से जुड़े हुए हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः अशिक्षा, कमजोर सामाजिक–आर्थिक स्थिति, जागरूकता तथा कार्य के औपचारिक अनुभव के अभावों जैसी प्रतिकूलताओं के रहते जनजातीय नेतृत्व की पंचायती राज संबंधी जानकारी के वर्तमान स्तर को सतही कहा जा सकता है। वे पंचायती राज के विभिन्न पक्षों की मुख्य जानकारी तथा प्रमुख प्रावधानों से अनभिज्ञ ही हैं।

पर्याप्त जानकारी के अभाव के कारण चाहे वह वित्त का क्षेत्र हो या ग्राम के समग्र विकास के लिए योजना निर्माण का कार्य या प्रत्यायोजित अधिकारों के निर्वहन का, वे स्वतंत्र रूप से कार्य निर्वहन में सक्षम नहीं हैं और अभी भी गैर जनजातीय सदस्यों, शासकीय अधिकारियों तथा प्रभावशाली व्यक्तियों पर अधिक निर्भर हैं। महिला प्रतिनिधियों की स्थिति तो अत्यन्त निम्न है।

फिर भी पंचायत राज के माध्यम से समाज के इस सबसे उपेक्षित तथा कमजोर वर्ग को आगे आने का जो अवसर प्राप्त हुआ है उसके लिए यह प्रथम अनुभव प्रशिक्षण के समान ही है। जैसे–जैसे जनजातीय क्षेत्रों में पंचायती राज का यह क्रम आगे बढ़ता जाएगा यह नेतृत्व और अधिक परिवक्व होगा और इस व्यवस्था पर इसकी पकड़ मजबूत होती जायेगी जिससे कि वह जनजातीय विकास के इस क्रम को नए आयाम देने में सक्षम होगा।

तालिका–1

पंचायतों के गठन संबंधी जानकारी

क्या आपको जानकारी है कि आपकी पंचायतों का गठन नए पंचायत राज कानून के तहत हुआ है?	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
हां	72 (100)	26(77.22)	98(90.74)
नहीं	–	10(27.78)	10(09.26)
योग	72(100)	36(100)	108(100)

तालिका–2

पुराने और नए पंचायती राज में अंतर की जानकारी

क्या आप नए और पुराने पंचायती राज में अंतर महसूस करते हैं?	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
हां	70(97.22)	26(77.22)	96(88.89)
नहीं	02(02.78)	10(27.78)	12(11.11)
योग	72(100)	36(100)	108(100)

तालिका–3

पुराने और नए पंचायत राज में प्रमुख अंतर

पुराने और नए पंचायती राज में प्रमुख अंतर	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था	06(08.33)	–	06(05.55)
सरपंच को पहले से अधिक–अधिकार	68(94.44)	13(36.11)	81(75.00)
पंचायतों को कार्य निर्वहन में अधिक स्वतंत्रता	26(36.11)	13(36.11)	81(75.00)
शासकीय अधिकारियों द्वारा ध्यान दिया जाने लगा है।	14(19.44)	01(02.77)	15(13.89)
अंतर स्पष्ट नहीं	03(04.17)	12(33.33)	15(13.89)

तालिका–4

ग्रामसभा की बैठक के अंतराल की जानकारी

बैठक के अंतराल की जानकारी	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
सही	58(80.56)	13(36.11)	71(65.74)
गलत	14(19.44)	23(63.89)	37(34.25)
योग	72(100)	36(100)	108(100)

तालिका–5

ग्रामसभा की बैठक हेतु आवश्यक गणपूर्ति (कोरम) की जानकारी

गणपूर्ति की जानकारी	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
सही	37(51.39)	02(05.56)	39(36.11)
गलत	35(48.61)	34(94.44)	69(63.89)
योग	72(100)	36(100)	108(100)

तालिका–6

ग्राम पंचायत की बैठक के अंतराल की जानकारी

ग्राम पंचायत की बैठक के अंतराल की जानकारी	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
सही	68(94.44)	24(66.67)	92(85.19)
गलत	04(05.56)	12(33.33)	16(14.81)
योग	72(100)	36(100)	108(100)

तालिका–7
विभिन्न समितियों के गठन संबंधी जानकारी

समितियों के गठन की जानकारी	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
हां	72(100)	20(55.56)	92(85.19)
नहीं	—	12(33.33)	16(14.81)
योग	72(100)	36(100)	108(100)

तालिका–8
विभिन्न समितियों के नामों की जानकारी

समिति	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
ग्राम शिक्षा समिति	72(100)	20(55.55)	92(100)
वन समिति	51(70.83)	09(45.00)	60(65.21)
सामान्य प्रशासन समिति	02(02.78)	—	02(2.17)
ग्राम रक्षा समिति	35(48.61)	06(30.00)	41(44.56)
निर्माण समिति	30(41.67)	02(10.00)	32(34.78)

तालिका–9
ग्राम पंचायतों को विभागों के हस्तांतरण की जानकारी

विभागों के हस्तांतरण की जानकारी	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
हां	72(100)	20(55.56)	92(85.19)
नहीं	—	16(14.44)	16(14.81)
योग	72(100)	36(100)	108(100)

तालिका–10
हस्तांतरित विभागों के नामों की जानकारी

विभागों के नाम	पुरुष (प्रतिशत)	महिला (प्रतिशत)	योग (प्रतिशत)
शिक्षा	72(100)	16(80.00)	88(95.65)
राजस्व	10(13.89)	—	10(10.86)
स्वास्थ्य21(29.16)	04(20.00)	25(27.17)	
महिला एवं बाल विकास	68(94.44)	11(55.00)	79(85.86)
विभाग के नाम मालूम नहीं	—	04(20.00)	04(04.34)

(पृष्ठ 9 का शेष)

भारत में ग्रामीण विकास के पचास वर्ष

ही रहेगी। ग्रामीण समाज की शक्ति संरचना आज भी कुछ ऐसी है जिससे सामाजिक न्याय की कल्पना करना बिल्कुल निराधार है। अतः ग्रामीण विकास को हमें एक सामाजिक परिवर्तन के रूप में देखना होगा जो प्रारम्भिक दिनों में शक्ति संरचना के लिए द्वन्द्वात्मक भी साबित हो सकता है। नीतिगत स्तर पर यह मान कर चलना होगा कि ग्रामीण विकास सकल प्रक्रिया नहीं होगी। कभी–कभी तो जैसा कि हमें बिहार में देखने को मिल रहा है–ग्रामीण संरचना के निहित शक्ति संरचना के साथ क्रांति जैसी स्थिति भी पैदा हो सकती है।

यहां यह भी ध्यातव्य है कि ग्रामीण स्तर का जो सरकारी तंत्र और नौकरशाही रचना है वह गरीबों के लिए बनाए गए ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए पर्याप्त नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि ग्रामीण स्तरीय नौकरशाही गरीब की निगाहों में अपनी साख खो चुकी है। अतः जनता की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए ग्राम स्तर पर जन संगठनों का उदय होना, प्राथमिक आवश्यकता महसूस होती है।

ग्रामीण विकास का उद्देश्य मात्र बंटवारे का न्याय ही नहीं है बल्कि इसका मुख्य झुकाव गरीब जनता की ऊर्जा को रचनात्मक दिशा में प्रयोग करना भी है। अतः ग्रामीण विकास संबन्धी नीति मात्र संख्यात्मक लक्ष्य को प्राप्त करना ही नहीं होना चाहिए बल्कि जागरूकता पैदा करना उसका एक विशिष्ट पहलू होना चाहिए। इसे अस्वीकारा नहीं जा सकता कि ग्रामीण विकास के कार्यक्रम लक्ष्य निर्देशित होने चाहिए। लेकिन लक्ष्य निर्देशित होने के साथ–साथ उन्हें भावनात्मक एकता से भी जुड़ना होगा। जैसे की पूर्व के तदर्थ तथा लक्ष्य निर्देशित ग्रामीण विकास के कार्यक्रम मनोवांछित फल नहीं दे सके हैं वैसे ही उनसे सबक लेते हुए आज के सभी ग्राम विकास के कार्यक्रमों को लोक–शक्ति के साथ जोड़ना होगा, जन–सहभागिता सुनिश्चित करनी होगी, नौकरशाही को रास्ते पर लाना होगा और राजनीतिज्ञों को प्रबल इच्छा–शक्ति दर्शानी होगी तभी ग्रामीण विकास का हमारा संकल्प सार्थक होगा अन्यथा वही पुरानी शराब नई बोतल में डल कर रह जाएगी। ❑

(पृष्ठ 34 का शेष)

ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका

ग्रामीण महिलाएं अपने घर के सारे काम करने के साथ खेती का कार्य, धान का बोझा ढोना, धान की मिजाई करना आदि कार्य में अपनी भागीदारी पूर्ण रूप से निभाती हैं। आर्थिक विकास में भी अपनी अभिरुचि को व्यक्त करती हैं। महिलाओं में परिवारों के साथ समन्वय की भावना भी बढ़ी है। समाज में इनका सम्मान भी बढ़ा है।

ऐसे कई उदाहरण हैं जिनसे महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रमाण मिलते हैं। यदि यही प्रक्रिया जारी रही तो जिले में निर्धन महिला समूहों पर आधारित एक वैकल्पिक ऋण प्रणाली विकसित हो सकेगी, जो सूदखोरों के जाल को सांप की केंचुली की तरह निकाल फेंकेगी। महिला स्वास्थ्य, बच्चों की अच्छी देखभाल तथा शिक्षा, जनसंख्या नियंत्रण की समझ, वैकल्पिक रोजगार से पारिवारिक आय बढ़ाने की बढ़ती इच्छा शक्ति, ऐसे संकेत हैं जो ग्रामीण विकास का रास्ता दिखाने लगे हैं। ❑

ग्रामीण बालिकाओं के लिए सार्थक शिक्षा

डा. राज भारद्वाज

ग्रामीण बालिकाओं को भोजन बनाना, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई अपने देश के भूगोल, इतिहास, संविधान, अर्थशास्त्र और स्वास्थ्य के अलावा भारतीय संस्कृति, संगीत और अंग्रेजी भाषा की जानकारी दी जानी चाहिए ताकि वे बाद में अच्छी गृहणी सिद्ध होने के अलावा बच्चों के पालन–पोषण और देश के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें। इसके अलावा माता–पिता को भी इस बात के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे अपनी बालिकाओं की शिक्षा के प्रति उपेक्षा–भाव न रखें।

ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के अधिक अवसर मिल रहे हैं

भारतीय दर्शन के अनुसार जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। नारी को पूजनीय बनने के लिए अपने व्यक्तित्व में ऐसे गुण अर्जित करने होंगे जिनसे वह आदर्श पुत्री, आदर्श गृहिणी, आदर्श माता और आदर्श नागरिक बन सके। भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामवासिनी है इसलिए ग्रामीण बालिकाओं के लिए सार्थक शिक्षा–व्यवस्था आधुनिक राष्ट्र की अनिवार्य आवश्यकता है। पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार एक बालक को शिक्षित करने से केवल एक व्यक्ति शिक्षित होता है परन्तु एक बालिका को शिक्षित करने से समग्र परिवार शिक्षित होता है।

व्यक्तित्व विकास के लिए शिक्षा अनिवार्य

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मानव में निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति का नाम शिक्षा है। स्पष्ट है कि ग्रामीण बालिकाओं को ऐसी शिक्षा दी जाए जिसके द्वारा उनके व्यक्तित्व का आदर्श विकास हो सके। गृहविज्ञान उनके पाठ्यक्रम का अनिवार्य विषय हो, जिससे वे संतुलित आहार का महत्व समझ सकें। सिलाई, कढ़ाई, बुनाई के साथ भोजन बनाने की कला में निपुणता प्राप्त कर सकें। यह सार्वभौमिक सत्य है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। उत्तम भोजन तथा मिष्ठान्न बनाने का कौशल निश्चय ही उनके व्यक्तित्व का विकास कर सकेगा।

यह सर्वविदित सत्य है कि प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से विश्व में भारत का अद्वितीय स्थान है, इसलिए ग्रामीण महिलाओं को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसके माध्यम से वे अपने राष्ट्र की सीमाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकें। आज जनसंख्या वृद्धि की विकट समस्या का एक प्रमुख कारण बालिकाओं के लिए सार्थक शिक्षा का अभाव है। सामाजिक ज्ञान शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाना होगा तथा इतिहास के माध्यम से भारतीय गौरव, भूगोल के माध्यम से भारतीय प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधनों का परिचय तथा नागरिक शास्त्र की शिक्षा के माध्यम से वे अपने अधिकारों और कर्तव्यों के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगी।

ग्रामीण बालिकाओं की पढ़ने लिखने में रुचि बढ़ रही है

वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए शिक्षा

भारत एक कृषि प्रधान राष्ट्र है। आज की बालिका कल की गृहस्वामिनी होगी। बालिकाओं के लिए सार्थक शिक्षा की यह भी आवश्यकता है कि उन्हें व्यावहारिक गणित की शिक्षा दी जाए। यह शिक्षा एक ओर उन्हें अपनी उपज का उचित मूल्य लेने में सक्षम बनाएगी तथा दूसरी ओर आर्थिक क्षेत्र में कोई भी उनका शोषण नहीं कर सकेगा। अर्थशास्त्र के अनुसार धन अर्जित करना सरल कार्य है परन्तु उचित व्यय करना निश्चय ही कठिन कार्य है। परम्पराओं एवं अंधविश्वासों के संबंध में उचित आचरण करने के लिए उन्हें सामान्य विज्ञान की शिक्षा देनी होगी जिससे वे अपने जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना सकें।

ग्रामीण जीवन में आज भी स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सुविधाओं का अभाव है। इसलिए ग्रामीण बालिकाओं के लिए वह शिक्षा सार्थक होगी जिसमें स्वास्थ्य की देखभाल भी पाठ्यक्रम का अंग हो। स्वास्थ्य शिक्षा में सामान्य रोगों की चिकित्सा, जल, भू, ध्वनि, वायु प्रदूषण से बचने के उपाय, शिशु पालन तथा बाल मनोविज्ञान में दक्षता आदि विषय अध्ययन के लिए निर्धारित किए जाएं।

भाषा, संगीत, संस्कृति का परिचय जरूरी

वस्तुतः शिक्षा की उपादेयता तभी सिद्ध होगी जब ग्रामीण बालिका मानव संसाधन विकास का एक महत्वपूर्ण साधन बन सकेगी, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् आदर्श गृहणी सिद्ध हो सकेगी। शैशव के सर्वाधिक संस्कारमयी वर्षो में बच्चों के चरित्र–निर्माण में अपनी उत्कृष्ट भूमिका का निर्वाह कर सकेगी। जनसंख्या वृद्धि, अंधविश्वास जातिप्रथा, साम्प्रदायिकता आदि समस्याओं पर विजय प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकेगी। अनेक ग्रामीण बालिकाएं विवाह के पश्चात् नगरीय जीवन में भी प्रवेश प्राप्त करती हैं, इसलिए यह भी अपेक्षित है कि ग्रामीण बालिकाओं को अंग्रेजी भाषा, संगीत, भारतीय संस्कृति आदि विषयों से माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ही परिचित करा दिया जाए।

भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–निर्माण के समय सभी शिक्षा आयोगों में स्त्री शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित किया गया। विश्वविद्यालय आयोग, 1948–49 ने स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में कहा कि स्त्री शिक्षा के बिना लोग शिक्षित नहीं हो सकते। यदि शिक्षा को पुरूषों अथवा स्त्रियो के लिए समिति करने का प्रश्न हो तो पढ़ाई का अवसर स्त्रियों को दिया जाए क्योंकि उनके द्वारा ही भावी संतान को शिक्षा दी जा सकती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है।

बाधाएं दूर होनी चाहिए

बालिकाओं की शिक्षा का अपेक्षित विकास इसलिए नहीं हो सका क्योंकि पुरुष–प्रधान समाज बालिकाओं की शिक्षा को महत्वपूर्ण नही समझता। बालिकाएं अज्ञानता के कारण शिक्षा में कम रुचि लेती हैं। निर्धनता तथा बाल–विवाह भी ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा में बाधक हैं। अनेक स्थानों पर सह–शिक्षा का विरोध, सुविधाओं का अभाव तथा उपयुक्त पाठ्यक्रम का अभाव भी ग्रामीण बालिकाओं के शैक्षिक विकास में बाधक बनता है। अनेक स्थान ऐसे भी हैं जहां जागरूकता होते हुए भी स्त्री शिक्षिकाओं के अभाव में बालिकाएं सार्थक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।

भारतीय शासन व्यवस्था की शिक्षा नीति के प्रथम लक्ष्य में बालिकाओं के लिए प्राइमरी शिक्षा का समयबद्ध कार्यक्रम 1990 तक तथा उच्च प्राइमरी स्तर 1995 तक था। साथ ही समानता को संवर्द्धित करने वाले शैक्षणिक कार्यकलापों की समीक्षा तथा पुनर्गठन की भी व्यवस्था थी। आज बालिकाओं को शैक्षिक तथा सामाजिक दृष्टि से समान स्तर पर लाने के लिए विशेष कार्यकलापों की आवश्यकता है। राष्ट्र निर्माण के कार्य में सुशिक्षित महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती है।

आइए, कुछ ऐसे बिन्दुओं पर विचार किया जाए जिनके माध्यम से ग्रामीण बालिकाओं के लिए सार्थक शिक्षा का सार्वभौमिकरण किया जा सकता है।

- ग्रामीण परिवेश में निवास करने वाले अभिभावकों को प्रेरित किया जाए कि वे बालिकाओं को प्रत्येक परिस्थिति में शिक्षा संस्थानों में भेजें तथा उन्हें भी पुत्रवत् प्रेम तथा अधिकार प्रदान करें।
- ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा के लिए उचित पर्यावरण बनाया जाए तथा विद्यालयों में शिशु शिक्षा केन्द्र खोले जाएं। कभी–कभी ऐसा होता है कि अपने छोटे बहिन–भाइयों की देख–भाल के लिए उन्हें घर पर रहना पड़ता है। शिशु शिक्षा केन्द्र खुलने पर ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा में व्यवधान उपस्थित नहीं होगा। विद्यालय में कुटीर अथवा लघु उद्योगों के प्रशिक्षण की व्यवस्था होने पर ये ग्रामीण बालिकाएं अपनी माता–पिता की आर्थिक स्थिति को सुधारने में भी सहायक हो सकती हैं।
- भारत में ग्रामीण बालिकाओं के लिए सार्थक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा दोपहर का भोजन, और अन्य पोषण कार्यक्रम संचालित किए जा सकते हैं।
- बालिकाएं स्वेच्छा से पारम्परिक पाठ्यक्रम से हटकर समाजोपयोगी पाठ्यक्रम के प्रति उन्मुख हो सकें इसके लिए विद्यालयों में उपयुक्त प्रशिक्षण प्रदान किया जाए।

बालिकाओं को सार्थक शिक्षा देने में पुरस्कार तथा प्रशंसा भी सहायक सिद्ध होंगे, निर्भीकता, विनोदप्रियता, सहनशीलता आदि गुण तभी विकसित होते हैं जब विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था उत्कृष्ट हो, और विद्यालय का भौतिक तथा भावात्मक पर्यावरण अनुकूल अध्यापिकाओं एवं छात्राओं के मध्य मधुर संबंध बालिकाओं के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना सकेंगे।

सार्थक शिक्षा हेतु उत्कृष्ट पाठ्यक्रम के साथ–साथ शिक्षक–बालिका अन्तःक्रिया, बालिका सहभागिता तथा परस्पर सहयोग द्वारा बालिकाओं को अपनी मौलिकता प्रदर्शित करने का भी अवसर मिलेगा। जहां तक मूल्यांकन का प्रश्न है इन विद्यालयों में व्यावहारिक कार्य के लिए अधिकतम अंक निर्धारित करने होंगे अर्थात् शिक्षा में सैद्धांतिक पक्ष से व्यावहारिक पक्ष को अधिक महत्व देना होगा। ❑

उदास दुल्हन

वह बैठी है
लग्न–मंडप में
दूल्हे के साथ
धराती, बाराती
सभी खुश हैं
छूट रहे हैं
हंसी के फव्वारे!

माहौल में
रौनक और उत्साह है
और हैं परिहास के
खुशनुमा सिलसिले!
किंतु दुल्हन उदास है

असल में
उसकी चिंता है
कि पिता ने उसके
ब्याह के लिये जो
ऋण लिया है
वह कब तक
और कैसे चुकेगा?

जय प्रकाश 'चन्द्र'

पर्यावरण की सुरक्षा और जलावन की समस्या

अंकुश्री

हमारे पर्यावरण का दायरा विस्तृत होने से उसकी सुरक्षा के लिये सावधानी का दायरा भी काफी विस्तृत है। जलावन हमारे पर्यावरण की सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यों तो हर प्रकार के जलावन का पर्यावरण से संबंध है, किंतु लकड़ी और गोबर का पर्यावरण के साथ कुछ अधिक ही गहरा संबंध है।

वनों के इर्द–गिर्द रहने वाले ग्रामीणों द्वारा वनों में गिरी–पड़ी सूखी लकड़ियां चुन कर जलावन के रूप में प्रयुक्त करने की परम्परा अति प्राचीन है। गैर वन क्षेत्रों के गांवों में भी पेड़ों को छांटने या झाड़ीनुमा पौधों को काटने से जलावन का काम चल जाता था। किंतु अब स्थिति बदल गई है। जलावन के लिये वनों में नन्हें–नन्हें पेड़ों को काट दिया जाता है। गैर वन क्षेत्रों में भी नवरोपित पौधों को अल्पायु में ही काट कर उन्हें जीवन का पूर्णानन्द नहीं लेने दिया जाता। इससे सारी योजनाएं बाधित हो जाती हैं और जलावन के नाम पर लकड़ियां भी बहुत थोड़ी मिल पाती हैं।

जलावन का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना आग के आविष्कार का। आदिम युग में वन ही मनुष्य का घर था। तब जलावन की कोई

समस्या नहीं थी। लेकिन सभ्यता के विकास के साथ–साथ जलावन की समस्या भी बढ़ती गई। आधुनिक युग में गांव हो या शहर, लकड़ी, कोयला, उपला, केरोसीन, गैस, बिजली या सौर ऊर्जा का ईंधन के रूप में उपयोग होता है। इनमें कोयला, केरोसीन, गैस और बिजली के उपयोग से वायु प्रदूषण फैलता है। इसलिये यह जरूरी है कि ईंधन के उपयोग और पर्यावरण के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाए। सौर ऊर्जा गैर पारम्परिक ईंधन है और इसके उपयोग से पर्यावरण का किसी स्तर पर प्रदूषण नहीं होता है बल्कि इससे पर्यावरण की सुरक्षा ही होती है। लेकिन इसका उपयोग अभी तक सर्वव्यापी और सर्वसुलभ नहीं हो पाने से घूमा–फिर कर हम पारम्परिक ऊर्जा–स्रोत पर ही धावा बोलते आ रहे हैं। इनमें भी सर्वव्यापी और सर्वसुलभ ईंधन लकड़ी और गोबर ही है।

हमारे देश में कम से कम 15 करोड़ टन जलावन की आवश्यकता है, जबकि वनों से मात्र इसका दसवां भाग ही मिल पाता है। इस कमी को अन्य स्रोतों से पूरा किया जाता है, जिनमें गोबर भी एक है।

जलावन के रूप में गोबर का उपयोग पर्यावरण के लिये अति घातक है। गोबर का खाद के रूप में प्रयोग खेत के लिये जितना अधिक उपयोगी है, जलावन के रूप में उसका प्रयोग उतना ही दुरुपयोग है। गोबर का यदि गोबर गैस के रूप में प्रयोग किया जाए तो इससे जलावन और खाद–दोनों समस्याओं का समाधान हो जाता है। इससे पर्यावरण पर भी कोई बुरा असर नहीं पड़ता। गांवों में यह काम सामुदायिक रूप से भी किया जा सकता है।

हमारे देश में उपलब्ध करीब 40 करोड़ टन गोबर के प्रयोग से खेत की उर्वरता बढ़ा कर उससे अच्छी फसल उपजायी जा सकती है। उर्वरा खेत के किनारे झाड़ी या छोटे पेड़ लगाकर उनका जलावन के रूप में कुछ महीने के बाद ही उपयोग किया जा सकता है।

गोबर के उपयोग से खेत में रासायनिक खाद के प्रयोग से बचा जा सकता है, जो आज हमारे अन्न–प्रदूषण के साथ ही जल और वायु प्रदूषण बढ़ाने में सहायक है।

कृषि उच्छीष्टों का भी जलावन के रूप में प्रयोग होता है। गोबर की तरह कृषि उच्छीष्टों को भी गांवों में जला दिया जाता है। कृषि उच्छीष्टों को सड़ा कर खाद के रूप में प्रयुक्त करना जितना उपयोगी है, जलावन के रूप में उसका प्रयोग उतना उपयोगी नहीं है।

आज कृषि का अर्थ सिर्फ अनाज उत्पादन हो गया है, चाहे वह पर्यावरण को किसी रूप में कितना भी प्रदूषित क्यों न कर ले। रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं का जितना घातक असर धरती पर पड़ता है, उसका अनुभव हमें आए दिन होता है।

पर्यावरण की चर्चा में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसका असर किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं होता। बल्कि यह सर्वव्यापी होता है। लकड़ी का जलावन के रूप में अत्यधिक प्रयोग से वनों पर खतरा आ जाता है जिससे पर्यावरण पर पड़ने वाला असर आज सर्वत्र दिखायी दे रहा है। गोबर का सही उपयोग नहीं होने से पर्यावरण पर क्या असर पड़ता है – इसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। इस तरह हम इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं कि वनों का क्षेत्रफल बढ़ाया जाए और खेत के किनारे या अन्य खाली जगहों में भी अत्यधिक संख्या में पेड़ लगाए जाएं। साथ ही पशुपालन को भी उत्पादक व्यवसाय के रूप में अपनाया जाए। इससे गोबर, खाद और खेती का सम्यक संबंध स्थापित हो सकता है, जो पर्यावरण के लिये अति हितकारी है।

बाढ़ हो या सूखा अथवा इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न अकाल या महामारी – यह पर्यावरण के असंतुलन का ही परिणाम हैं। प्रकृति को सम्मान देते हुए प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा से ही पर्यावरण की रक्षा हो सकती है, भले वह सुरक्षा जलावन के रूप में ही क्यों न हो। ❑

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में *पाठकों के विचार* स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय कृषि भवन, नई दिल्ली–110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

— सम्पादक

गांधी जी का स्वप्न*

केन्द्रीय सामुदायिक विकास और सहकारिता मन्त्री श्री सुरेन्द्रकुमार दे ने हाल में ही दिल्ली में राज्य विकास आयुक्तों के दो दिन के सम्मेलन का उदघाटन करते हुए कहा कि पंचायती राज से जैसे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, वैसे सामुदायिक विकास–कार्यक्रम में और किसी चीज से नहीं हुए। मंत्री महोदय ने कहा कि जिन राज्यों में पंचायती राज प्रणाली शुरू की गई है, वहां उसने जनता में उत्तरदायित्व की एक नई भावना उभारी है और उसकी शक्ति को प्रवाहित किया है। लोग अभी तक बन्धन में रह कर काम करते थे, अब वह निर्बाध हो गए हैं और यदि उनकी शक्ति को उचित दिशा नहीं दी गई तो खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इस शक्ति का सही इस्तेमाल करने से लोकतंत्र की नींव मजबूत होगी और यह भरोसा पैदा होगा कि ग्राम सभा से लोक सभा तक लोकतंत्र बना रहेगा।

श्री जयप्रकाश नारायण ने भी, जिन्हें अखिल भारत सर्व सेवा संघ के कुछ अन्य प्रतिनिधियों सहित विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया था, सम्मेलन के सम्मुख भाषण किया।

यलवल शिविर में सामुदायिक विकास और सर्व सेवा संघ के काम का जो समन्वय हुआ उसका उल्लेख करते हुए श्री दे ने कहा कि संघ के सहयोग का स्वागत है, विशेष रूप से इसलिए कि राजनीतिक दलों से कोई सहायता नहीं मिल रही है। उन्होंने कहा कि संघ के सहयोग से शिक्षा का कार्यक्रम लागू करने में मदद मिलेगी जिसका पंचायती राज के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण योगदान होगा।

श्री दे ने कहा कि पंचायत राज के तीन मुख्य पहलू हैं शिक्षा, उत्पादन और अपने यत्न से काम की शुरुआत।

राजस्थान और भारत के अन्य राज्यों से आनेवाले किसानों से अपनी बातचीत का उल्लेख करते हुए श्री दे ने कहा कि मुझे यह विश्वास हो चला है कि उन राज्यों में अर्जियां देने और शिकायतें पेश करने का युग बीत चुका है जहां विकास–कार्यक्रम बनाने और उन्हें लागू करने का सारा उत्तरदायित्व जनता पर ही डाल दिया गया है। राजस्थान के किसानों ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि स्कूलों, बीजों, उर्वरकों, सिंचाई आदि की सभी समस्याएं अब उन्हें खुद ही हल करनी पड़ेंगी क्योंकि उन्हें न केवल इनका उत्तरदायित्व सौंपा गया है बल्कि इनके सारे अधिकार, कर्मचारी और वित्त भी उनके हाथ में आ गए हैं।

श्री दे के बाद बोलते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने सर्व सेवा संघ के पूर्ण सहयोग का आश्वासन देते हुए कहा कि पंचायती राज एक साहसपूर्ण परीक्षण है जिसके द्वारा भारत की 40 करोड़ जनता की सुप्त शक्ति को जागृत किया जा सकता है। जिस काम को राजनीतिक दल और नेता करने में असफल रहे हैं, हो सकता है पंचायती राज का परीक्षण वह करिश्मा कर दिखाए। तथापि राजस्थान ने दिखा दिया है कि इस दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।

श्री जयप्रकाश ने कहा कि इस परीक्षण को असफल कदापि नहीं होने देना चाहिए और इसकी सफलता के लिए हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि यदि यह परीक्षण असफल रहा तो भारत में लोकतंत्र की कोई सम्भावना नहीं रहेगी। इस परीक्षण का विशेष महत्व इसलिए है कि इसी पर यह प्रश्न निर्भर करता है कि भारत में लोकतन्त्री व्यवस्था जारी रहेगी या नहीं और इसी की सफलता से एशिया और अफ्रीका के अन्य देशों का मार्गदर्शन होगा।

श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि पाश्चात्य ढंग के लोकतंत्र की दलीय पद्धति एशिया और अफ्रीका के देशों के लिए उपयुक्त नहीं है। उच्च स्तर पर 12 वर्ष तक यह पद्धति जारी रही, पर इसने दिखा दिया कि वयस्क मताधिकार के बावजूद भी लोकतंत्र जनता के निकट नहीं पहुंचा। इस पद्धति का परिणाम यह निकला कि सत्ता लोकतंत्री ढंग से कुछ थोड़े से लोगों में केन्द्रित हो गई। कुछ उच्च वर्गों के थोड़े से लोग ही समय–समय पर चुनें जाते हैं और जनसाधारण को इस बात का आभास भी नहीं हो पाता कि इस पद्धति में उनका भी कोई हाथ है। उन्हें यह आभास 5 वर्षों में केवल उसी दिन होता है जब वे वोट डालने जाते हैं।

श्री जयप्रकाश नारायण के अनुसार गांधी जी का ग्रामराज गांवों में लोकराज पर आधारित था जो उनकी प्राथमिक आवश्यकताएं पूरी करने के अधिकतर काम करेगा और उच्च स्तर के हाथ में जो काम हैं, वे लगातार कम होते जाएंगे। अब पंचायती राज में गांवों में पंचायत और 100 गांवों के खण्ड में खण्ड समिति की पद्धति से गांधी जी का स्वप्न साकार होने की सम्भावनाएं बहुत उज्ज्वल हो गई हैं। ❑

** कुरूक्षेत्र के मार्च 1960 अंक से उद्धृत*

(आवरण पृष्ठ दो का शेष)

था। इसके ठीक एक वर्ष बाद मिस्र में एफ्रो–एशियाई ग्रामीण पुनर्निर्माण संगठन (आरो) अस्तित्व में आया।

इस संगठन की स्थापना के पीछे अपने समय के नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। भारत के कृषि मंत्री डा. पंजाबराव एस. देशमुख और भारत में जापान के तत्कालीन राजदूत डा. शिरोसी नासू ने एशियाई देशों की समान समस्याओं पर विचार के लिए एक फोरम के विचार को मूर्त रूप दिया। यह 1950 की बात है। इसके बाद अनेक विचार–विमर्श हुए। नई दिल्ली में 18 से 25 जनवरी 1961 को ऐतिहासिक सत्र के साथ संगठन को आधार मिला। आज इस संगठन में 27 देश शामिल हैं। पहले आधार सम्मेलन में 23 देश इसमें शामिल हुए थे।

इस वर्ष 21 जनवरी को आरो की 12वीं सामान्य सभा की बैठक का उद्घाटन लोकसभा अध्यक्ष श्री जी. एम. सी. बालयोगी ने किया। उन्होंने कहा कि गरीबी दूर करने, समाज में समता लाने और वितरण में न्याय के लिए तथा वांछित सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए लोगों की भागीदारी से योजनाबद्ध ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाए जाने जरूरी हैं।

भारत को अगले तीन वर्षों के एफ्रो–एशियाई ग्रामीण पुनर्निर्माण संगठन (आरो) का अध्यक्ष चुना गया। संगठन का नाम भी बदल कर एफ्रो–एशियाई ग्रामीण विकास संगठन कर दिया गया। आरो की सामान्य सभा की बैठक को संबोधित करते हुए निवर्तमान अध्यक्ष भारत में मिस्र के राजदूत श्री गोहाद मीदा ने आशा की कि भारत की अध्यक्षता में संगठन अपने कार्यकलापों की नई बुलंदियों को छुयेगा और अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के अपने प्रयास जारी रखेगा।

संगठन की कार्यकारिणी की बैठक में संगठन के महासचिव डा. बहार मुनिप ने कहा कि संगठन मानव संसाधन कार्यक्रमों के माध्यम से सदस्य देशों के लिए कृषि ओर ग्रामीण विकास के क्षेत्र में विशिष्ट प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराता है। इसके अलावा विकास परियोजनाओं को आंशिक वित्तीय सहायता भी दी जाती है। इन परियोजनाओं से छोटे और मझोले किसानों, भूमिहीनों और अन्य ग्रामीण गरीबों को आत्मनिर्भर बनाने में मदद मिलती है तथा अपने विचारों और जानकारी को खुलकर आदान–प्रदान करने का अवसर मिलता है और उनमें चेतना पैदा होती है जिससे उनके रहन–सहन के स्तर में सुधार आता है। वास्तव में ये परियोजनाएं गरीबों के विकास से जुड़ी हैं।

डा. मुनिप ने ग्रामीण विकास में भारत के योगदान की सराहना की। उन्होंने कहा कि भारत समृद्ध सांस्कृतिक विरासत वाला प्रचीनतम सभ्यताओं का देश है। सदियों से प्राकृतिक स्रोतों को भण्डार रहा है। भारत की अधिसंख्य आबादी कृषि और उससे जुड़े व्यवसायों पर निर्भर है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों का विकास और ग्रामीण लोगों की आर्थिक–सामाजिक स्थितियों को बेहतर बनाने की सोच भारत के नीति–निर्माताओं की रही है। कुछ दशक पहले हुई हरित क्रांति ने खाद्यान्नों के मामले में भारत को आत्मनिर्भर बनाया। उन्होंने कहा कि विश्व में किसी भी देश से अधिक बजट आबंटन ग्रामीण विकास के लिए सिर्फ भारत में ही है।

उन्होंने ग्रामीण विकास और कृषि के क्षेत्र में सदस्य देशों को भारत से सीखने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि सभी एफ्रो एशियाई देशों में कमोबेश समान समस्याएं हैं। डा. मुनीप ने भारत की सराहना की कि उसने अपने विभिन्न कार्यक्रमों के अनुभवों को, जिनमें आरों के कार्यक्रम भी हैं, अन्य देशों के बीच बांटने में हमेशा ही तत्परता दिखाई है।

आरो दक्षिण–दक्षिण सहयोग के संवर्द्धन के लिए अपनी गतिविधियां मानव संसाधन विकास, पाइलट परियोजनाओं का विकास, विशेषज्ञों को डेपुटेशन पर भेजने, सरकारी समितियों के विकास, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से सहयोग, तकनीकी सहयोग कार्यक्रम में भागीदारी और सूचनाओं के आदान–प्रदान आदि के माध्यम से करता है।

इसके प्रशिक्षण कार्यक्रम भारत में राष्ट्रीय विकास संस्थान, हैदराबाद; राष्ट्रीय लघु उद्योग विस्तार संस्थान, हैदराबाद; दक्षिण भारत वस्त्र संघ, कोयंबटूर; केन्द्रीय उर्वरक गुणवत्ता नियंत्रण एवं प्रशिक्षण संस्थान, फरीदाबाद आदि के माध्यम से संचालित किये जाते हैं। ❑

आर.एन. / 708 / 57
डाक–तार पंजीकरण संख्या :डी (डी एल) 12057 / 2000
आई.एस.एस.एन. 0971–8451
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)–55

R.N./708/57
P&T Regd. No. D (DL) 12057/2000
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, D[illegible]54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक: अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू–30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया–II नई दिल्ली–20. सम्पादक : बलदेव सिंह मदान